वर्ष ६, अंक २

श्रीकृष्णाय नमः

कार्तिक पूर्णिमा १९८८

Pandit Jai Ram Gaur.

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

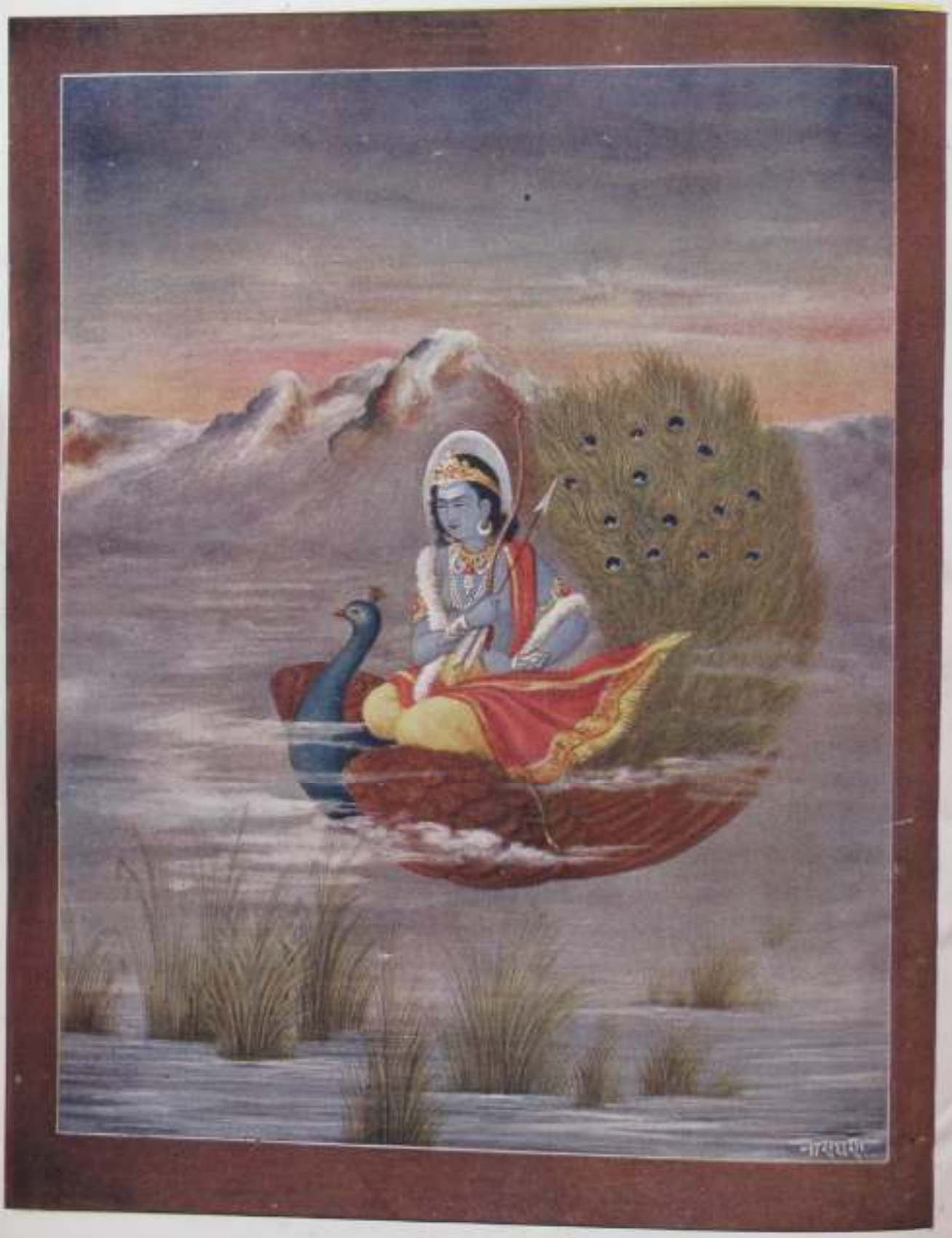

गंगापुत्र कार्तिकेय

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ६ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, कार्तिक पूर्णिमा सं० १९८८ | अंक २ पूर्ण संख्या ६२

वेदोपदेश

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ॥१॥

आप बल वाले, आदि अन्त रहित, भली प्रकार से व्यापक, और सबके निवास स्थान हैं। अतः हम आप की उपासना करते हैं।

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महेवयम् ॥२॥

हे परमात्मन् ! आप सब जगत् में उत्तम हैं। सब का धारण पोषण करने वाले हैं, सब के जानने योग्य आप ही हैं अतः हम आप की उपासना करते हैं ॥ २ ॥

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि ।
राजा मे प्राणे अमृतं सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥३॥

श्री मेरा शिर स्थानी, कीर्ति मेरा मुख, सत्य गुणों का प्रकाश मेरे केश, दाड़ी और मूंछ के समान तथा ईश्वर मेरा प्राण, अमृत स्वरूप जो ब्रह्म है वह मेरा सम्राट् और जो अनेक विद्याओं से प्रकाश युक्त है वही मेरा श्रोत्र है वही आंख है ॥ ३ ॥

आचार्य उपनयनो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भ मन्तः ।
तं रात्रिस्तिस्रः उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभि संयन्ति देवाः ॥४

ब्रह्मचारी को अपने पास रखने वाला आचार्य उस को अपने अन्तर करता है उस ब्रह्मचारी को अपने उदर में तीन रात्रि तक रखता है जब वह ब्रह्मचारी द्वितीय जन्म लेकर बाहर आता है तब उसको देखने के लिये सब विद्वान सब प्रकार से इकट्ठे होते हैं ॥ ४ ॥

पुनन्तु मां देवजना पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मां ॥५॥

हे जात वेद परमेश्वर! आप मुझे पवित्र कीजिये आप मेरी बुद्धि को पवित्र कीजिए। सब संसारी जीव आप की कृपा से पवित्र होकर आनन्द में रहें ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति ।

[ले० श्री पूर्व स्वामी भोले बाबा जी]

कथा अजामिल की ।

अजामिल पूर्व जन्म में ब्राह्मण था, वन में तप किया करता था, मरते समय एक चांडाली में उसका ध्यान चला गया और वह मर गया। इस जन्म में कान्यकुब्ज नगर में ब्राह्मण के घर उसने जन्म पाया परन्तु बालकपन से ही वह पाप कर्म में रहता हुआ, एक पुंश्चली स्त्री को देख कर आसक्त हो गया, इस के साथ रहने लगा, पक्षी मृग मारना मद्यपान करना, चोरी करना और जुआ खेलना आदि पाप कर्म उस की जीविका थी। उसके पाप कर्मों का वर्णन करना अच्छा नहीं है।

एक बार बिना जाने भगवद्भक्त उसके घर पर आये। उसने प्रेम से सब की सेवा की, रसोई, आदि भले प्रकार से की और दीन होकर अपना सब वृत्तांत कह कर इसने उनके चरण पकड़ लिये। हरिभक्तों को दया आई और चलते समय वे उपदेश कर गये कि अब की बार जो लड़का उत्पन्न हो, उसका नाम नारायण रखियो। अजामिल ने ऐसा ही किया। लड़के का नाम नारायण रक्खा और उसे वह बहुत ही प्यार करता था। जब वह मरण समय यमदूतों से पीड़ित हुआ, तब नारायण को पुकारने लगा। इतने ही में नारायण के पार्षद पहुंचे, उन्होंने यमदूतों को मार कर निकाल

दिया और वे उसको वैकुण्ठ में ले गये। यमदूतों में यमराज के पास जाकर दुहाई दी कि ऐसे पापी ने अपने बेटे को पुकारा था, कुछ भगवत् को जान कर नहीं पुकारा था, उसे नारायण के पार्षद वैकुण्ठ ले गये और हमको उन्होंने मारकर निकाल दिया। यमराज ने कहा कि जब मरने के समय किसी प्रकार भी भगवन्नाम लिया, तो अब उसे कौन सा धर्म कर्म करने को शेष रह गया, तुमको इतना ज्ञान नहीं है, अच्छा हुआ जो तुम को दण्ड मिला, आगे के लिये याद रक्खो कि जहां भगवन्नाम का उच्चारण किसी प्रकार हो, वहां न जाना क्योंकि जहां भगवन्नाम है, वहां यमदूतों का क्या काम है। अजामिल के परमधाम जाने के पीछे उसकी पुंश्चली स्त्री भी नाम में मनलगा कर इसी गति को प्राप्त हुई। धन्य है भगवन्नाम की महिमा और प्रताप को! कहां अजामिल के घोर पाप और क्या पदवी प्राप्त हुई! केवल धोखे में नाम लेने के प्रभाव से उत्तम गति मिली तो जान कर नाम लेने से उत्तम गति क्यों न मिलेगी। अवश्य मिलेगी! इस चरित्र से सत्संग की महिमा और गीता के नवें अध्याय में भगवान् ने कहा है कि मेरे भक्त का नाश नहीं होता, यह बात प्रकट होती है।

कुं-महिमा भगवन्नाम की, को कहि पावे पार।
भूले से हरि नाम ले, तो भी हो उद्धार॥
तो भी हो उद्धार, अजामिल गाथा पढ़िये।
जपिये सादर नाम, मित्र! भवसागर तरिये॥
भोला! जप हरिनाम, जोर से अथवा धीमा।
पापी हो निष्पाप, नाम की अद्भुत महिमा॥

कथा एक राजा की।

एक राजा अन्तर्निष्ठ ऐसा परम भागवत् था कि भगवत् का स्मरण भजन आदि सर्वदा मन में हो किया करता था और बाहर की वृत्ति उसकी ऐसी थी कि सब लोग उसे महाविषयी और संसारी समझते थे। रानी हरिभक्त थी, उसे भी राजाकी अन्तर्निष्ठा का ज्ञान न था, इसलिये रातदिन शोक किया करती थी कि राजाकी किसी प्रकार भगवत् में प्रीति हो। एक दिन निद्रामें राजा के मुख से भगवन्नाम निकल गया रानी ने उस दिन नौबत बजवाई दान पुण्य किया और बड़ा उत्साह मनाया। राजा ने उत्साह का कारण पूछा। रानी ने विनय किया कि रात आपके मुख से भगवन्नाम निकला, इसलिये उत्साह मनाया है। राजा ने कहा कि भगवन्नाम जो प्राण का मूल शरीर में था, जब वह ही निकल गया तो अब शरीर किस काम का है। यह कह कर राजा ने शरीर त्याग दिया और तुरन्त परमपद को प्राप्त हुआ। रानी ने जो यह गुप्त भक्ति भाव राजा का देखा तो ऐसे परम भक्त के वियोग और अपने अज्ञान के शोक से अत्यंन्त विकल और बेसुधि हुई कि राजा के प्रेम और भगवद्भाव में मग्न हो कर प्राण त्याग कर जिस परम धाम को राजा प्राप्त हुआ था, इसी परम धाम को प्राप्त हुई। हे संसारामं! यह बात निश्चय सत्य है कि जिसको भगवन्नाम में प्रीति नहीं है; वह जीता हुआ भी प्रायः मृतक ही है और जिसको भगवन्नाम में प्रीति है, वह सदा अमर है।

कुं-भगवत् भगवन्नाम में, रंचक नाहीं भेद।
नामी पृथक् न नाम से, दोनों एक अभेद॥

दोनों एक अभेद, नाम हरि जिस को प्यारा।
सो है भगवद्रूप, नहीं भगवत् से न्यारा॥
भोला! भज हरिनाम, रात दिन सोवत जागत।
जो भगवत् सो नाम, नाम जो सो ही भगवत्॥

कथा एक ब्राह्मण की।

एक भगवद्भक्त ब्राह्मण अपनी स्त्री को उसके मैके से लिये आ रहा था। मार्ग में ठग मिल गये। जब ब्राह्मण ने उनसे पूछा कि कहां जाते हो, तो वे कहने लगे कि जहाँ तुम जाते हो, वहां ही हम जाते हैं, हम सीधा मार्ग जानते हैं, तुम भी हमारे साथ चले चलो। जब ब्राह्मण को विश्वास न आया तब उन्होंने रामचन्द्र के नाम को बीच में दिया यानी साक्षी बनाया। ब्राह्मण को फिर भी विश्वास न हुआ, तब स्त्री ने समझाया कि अब इनकी बात न मानना योग्य नहीं है। पश्चात् ब्राह्मण ब्राह्मणी दोनों ठगों के साथ हो लिये। जब महावने वन में पहुंचे, तो ठग ब्राह्मण को मार कर सब वस्तुयें और स्त्री को ले चले। स्त्री पीछे फिर २ कर देखती जाय। ठगों ने पूछा कि अब पीछे किस को देखती है, तेरा खसम तो मारा ही गया। स्त्री ने उत्तर दिया कि जो हमारे तुम्हारे बीच में है, इसको देखती हूं, सब कहने लगे कि कहने की बात है अब रामचन्द्र कहां है? स्त्री को दृढ़ विश्वास था, कहने लगी कि देखो वह आरहे हैं! इतने ही में भक्तार्त्तहारी, धनुषधारी महाराज धनुष बाण लिये हुये घोड़े पर सवार बड़े वेग से घोड़े को दौड़ाते हुये आपहुंचे। आते ही ठगों को मार डाला और ब्राह्मण को ज़िला दिया। पश्चात् दोनों को उनके घर के समीप पहुंचा कर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

मंसाराम-महाराज! ब्राह्मण के मरने से पहिले ही भगवान्क्यों न आये। ऐसा होता तो विचारे ब्राह्मण को मरने का कष्ट न होता।

मस्तराम-भाई! ब्राह्मण का भगवन्नाम में विश्वास शिथिल था और ब्राह्मणी का दृढ़ विश्वास था, इसलिये ब्राह्मण को कष्ट उठाना पड़ा। यदि ब्राह्मण का भी ब्राह्मणी के समान दृढ़ विश्वास होता तो भगवान् इसे मरने न देते और प्रथम ही आजाते।

कुं-श्रद्धा भगवन्नाम में, भगवत् में विश्वास।
जन्म उन्हीं का है सफल, वे ही हैं हरिदास॥
वे ही हैं हरिदास आश जग की नहिं करते।
सब से रहें उदास, स्वस्थमन सदा विचरते॥
भोला! श्रद्धा धार, करे मत भूल अश्रद्धा।
होवें भव से पार करें जे हरि में श्रद्धा॥

कथा कबीर जी की।

कबीर जी काशी में ऐसे भगवद्भक्त हुये कि जिन की भक्ति का प्रताप जगत् भर में विख्यात है। यह भक्ति के सिवाय अन्य कर्म को अधर्म जानते थे अर्थात् योग, यज्ञ, दान, व्रत आदि भगवत् भजन भाव विना वृथा समझते थे। शास्त्रों का भी निस्संदेह यह ही अभिप्राय और सिद्धांत है कि अन्य साधन शून्य के सदृश हैं और कृष्ण नाम अङ्क के सदृश है। यदि कृष्ण नाम अङ्क प्राप्त है, तो योग, यज्ञ, दान, व्रत आदि शून्य कृष्ण नाम अङ्क पर अधिक होकर सब दश गुणे हो जाते हैं, और यदि कृष्ण नाम अङ्क न हो तो सब शून्य, व्यर्थ और रिक्त हैं किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं करते।

श्रीसमर्थ रामदास स्वामी।

[ले० श्रीं साहित्याचार्य पं० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी, साहित्यरत्न]

कृतेतु मारुताख्याश्च त्रेतायां पवनात्मजः।
द्वापरे भीमसंज्ञश्च रामदासःकलौयुगे॥ * (भविष्य पुराण)

जिन महापुरुष ने भक्ति तरङ्गिणी का प्रचण्ड अविरल धारा से सम्पूर्ण दक्षिण भारत को परिपावित कर सुप्तावस्था में पड़ी पराधीन पद-दलित हिन्दु-जाति में स्वाभिमान और स्वाधीनता के भाव जागृत किये थे उन परम भक्त महात्मा श्री समर्थ रामदास स्वामी का जन्म शाके १५३० (सन् १६०८ ई० के अप्रेल में) कील नामक संवत्सर में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में राम-नवमी के दिन मध्यान्ह के समय ठीक रामजन्म के अवसर पर पुण्यसलिला गोदावरी के तीर 'बीड़' प्रान्त के 'जांब' नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम सूर्याजी पन्त और माता का नाम राणुबाई था। वे देशस्थ ब्राह्मण थे। सूर्याजी पन्त बड़े नैष्ठिक ब्राह्मण और भगवद्भक्त थे। वे सदैव साधुसंतों की सेवा किया करते थे। उन्होंने उत्तम पुत्ररत्न की प्राप्ति के हेतु तत्कालीन प्रसिद्ध महात्मा श्री एकनाथ स्वामी के परामर्श और आदेश से सूर्यनारायण की उपासना कठिन व्रत साधन करके की थी। कहते हैं कि सूर्यदेव के शुभाशीर्वाद से ही उनके समर्थ रामदास उत्पन्न हुए थे। इनकी उत्पत्ति पर श्रीएकनाथ स्वामी ने सूर्याजीव राणुबाई की सराहना करते हुए कहा था- "तुम धन्य हो आज तुम्हारा वंश पवित्र होगया। तुम्हारा यह बालक श्रीहनुमान् जी के अंश से उत्पन्न हुआ है। इसका अवतार भक्ति के प्रचार व जीवों के कल्याण के हेतु हुआ है।"

बालक पन में समर्थ रामदास स्वामी का नाम नारायण था। वे बालकपन में बड़े चंचल और उपद्रवी थे। वृक्ष शाखाओं पर चढ़कर बन्दरों के समान उछल कूद मचाना व मुँह बनाकर साथी बालकों को चिढ़ाना उनका अत्यन्त प्रिय खेल था। पांचवर्ष की अवस्था में सूर्याजी ने इन्हें मातृभाषा मराठी की शिक्षा के हेतु गुरु के पास भेजा। थोड़े ही दिनों में समर्थ ने मराठी भाषा में अच्छी योग्यता प्राप्त करली। तदनन्तर सूर्याजी ने एक कर्मकाण्डी संस्कृतज्ञ ब्राह्मण देवता के यहाँ इन्हें संस्कृत पढ़ाने के हेतु भेजा। प्रतिभाशाली होनहार बालक समर्थ ने दस ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही संस्कृत में अच्छा अभ्यास कर लिया। भाग्यवश इसी समय सूर्याजीपन्त का स्वर्गवास होगया। पिता की मृत्यु का बालक समर्थ के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वे संसार से विरक्त से होगये। पिता की मृत्यु के बाद समर्थ के ज्येष्ठ बंधु श्रेष्ठ जी ने घर का काम सम्हाला। वे शिष्यों को दीक्षा

* "श्री हनुमान् जी का जो अवतार सतयुग में हुआ उसे 'मारुत,' जो त्रेतायुग में हुआ उसे 'पवनसुत,' जो द्वापर में हुआ उसे 'भीम' और जो कलियुग में हुआ उसे 'रामदास' कहते हैं।"

देकर गुरु-मंत्र सिखलाते और रामभक्ति का उपदेश देते थे। समर्थ ने अनेक बार उनसे दीक्षा व गुरु-मंत्र की प्रार्थना की पर समर्थ की बाल्यावस्था देखकर वे यह कहकर टालते रहे कि अभी तुम्हारी बाल्यावस्था है। तुम दीक्षा के योग्य नहीं हो।

अंत में बंधु के उत्तर से खेदित होकर समर्थ रामदास अपने ग्राम के बाहर पुण्यसलिला गोदावरी के तट पर बने हुए श्रीहनुमान जी के मन्दिर में दृढ़ प्रतिज्ञा करके राम-भक्ति का गुरुमंत्र पाने के हेतु आ बैठा। कहते हैं कि दृढ़ प्रतिज्ञ समर्थ की उत्कट भक्ति और दृढ़ निष्ठा देखकर श्रीहनुमान जी ने उनपर कृपाकर उन्हें दर्शन दिये और उनकी बारम्बार की विनीत प्रार्थना पर रीझकर उन्हें श्री रामचन्द्र जी के दर्शन कराये। देवाधिदेव भगवान् राम ने अपने अनन्य भक्त रामदास को 'श्रीराम जय राम जय जय राम' इस त्रयोदशाक्षरी मंत्र का उपदेश दिय और उन्हें लोकोद्धार के कार्य करने का आदेश दिया। उसीदिन से समर्थ भक्ति में तल्लीन रहने लगे।

माता राणुबाई की प्रबल इच्छा अपने प्यारे पुत्र समर्थ के विवाहने की थी। जब समर्थ ने माता के मुख से अपने विवाह की बात सुनी तब वे उसी दिन रात में चुप चाप घर से निकल भागे। प्रातः काल होने पर श्रेष्ठ जी इन्हें ढूंढने गये। बड़ी कठिनता से उन्होंने एक जंगल में समर्थ को पाया और समझा बुझाकर वे इन्हें घर ले आये। कुछ दिन तक समर्थ शान्ति से घर में रहे। माता राणुबाई अपनी बात पर दृढ़ थीं। उन्होंने पुनः समर्थ को विवाह करने के लिये समझाया। अंत में बड़े आग्रह से समझाते हुए जब माता ने अपनी शपथ दिलाकर इनसे 'अन्तर-पट' पकड़ने तक विवाह से इन्कार न करने का अनुरोध किया तब समर्थ माता की बात पर सहमत होगये। निकट सम्बन्धी की एक सुशील कन्या से विवाह की बात पक्की की गई। लग्न के दिन धूम धाम से बरात गई और कन्या पक्ष वालों ने उसका यथोचित आदर किया पाणिग्रहण (भांवर) के पूर्व पुण्याहवाचन होने पर जब 'अन्तर-पट' पकड़ने का अवसर आया और ब्राह्मणों ने एक साथ उच्चस्वर से सावधान' कहा तब समर्थ सचेत होगये। उनने सोचा कि मैंने माता से 'अन्तर-पट' पकड़ने तक विवाह से इन्कार न करने का प्रण किया था वह पूरा हो चुका। यह सोचकर वे उठखड़े हुए और बोले- 'मैं सावधान हूं' यह कहकर वे लग्नमण्डप से बाहर भागे। लोगों ने उन्हें पकड़ने का प्रयत्न किया पर वे इन्हें न पासके। समर्थ भागकर डेढ़ सौ मील दूर नासिक पहुंचे और पंचवटी में रामचंद्र जी के दर्शन किये। वहां से फिर समर्थ पंचवटी से तीन मील पूर्व की ओर गोदावरी के किनारे टाकली नामक ग्राम में पहुंचे। वहां ग्राम से बाहर एक वृक्ष के नीचे उन्होंने कुटी बनाई और तपस्या करने का विचार किया। वे नित्य प्रातःकाल उठ कर शौचादि से निवृत्त होकर गोदावरी स्नान करने जाते थे और जल में कटिपर्यन्त खड़े होकर त्रयोदशाक्षरी मंत्र का दोपहर तक जप करते थे। फिर पंचवटी पहुंच श्री रामचंद्र जी का दर्शन करते व भिक्षा मांग कर मधुकरी लाते और भगवान् को भोग लगाकर प्रसाद पाते थे। फिर कुछ काल तक भजन करते और सायंकाल होते ही जप और ध्यान में निमग्न होजाते थे। नित्य प्रति जल में कटिपर्यन्त

खड़े होने से खाल गल कर सफेद होगई और मछली आदि जलचरों ने कटि के नीचे के भाग का मांस खाना आरम्भ किया पर दृढ़प्रतिज्ञ रामदास इससे ज़रा भी विचलित न हुए। सच है–

"मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्।"

लगातार बारह वर्ष तक समर्थरामदास ने इस प्रकार घोर तपस्या की। बारह वर्ष के पश्चात् भगवान का पूर्ण अनुग्रह प्राप्त कर उन्होंने तपस्या बंद की और टाकली ग्राम में–अपने तपस्या करने के स्थान में मारुति की मूर्ति को स्थापना करके वे तीर्थाटन को निकले। तीर्थाटन के समय उनके पैरों में पादुका, हाथ में माला, काँख में तुम्बा, माथेपर तिलक और शरीर में भगवाँ रँग की कफनी थी। उन्होंने पैदल ही पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर तक सम्पूर्ण भारत की यात्रा की। उदर निर्वाह के हेतु उन्होंने भिक्षावृत्ति स्वीकार की। इस प्रकार यात्रा करते हुए उन्होंने भारत की तत्कालीन, धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति का अच्छा परिचय प्राप्त कर लिया था। समर्थ रामदास की बारह वर्ष की पैदल यात्रा का वर्णन थोड़े में कर सकना असम्भव है। इसके लिये तो एक विशाल क्षेत्र चाहिये पर यात्रा सम्बन्धी मुख्य घटनाओं में से दो एक का उल्लेख यहाँ पाठकों की जानकारी के लिये करता हूं।

जब समर्थ रामदास घूमते घामते काशी पहुंचे और भूतभावन भगवान् विश्वनाथ जी के मन्दिर में दर्शनों को गये तब इनका वेष, गेरुए रंग की कफनी आदि देखकर वहां के ब्राह्मण पुजारियों ने इन्हें ब्राह्मणेतर जाति का समझ कर 'लिङ्ग' के समीप न जाने दिया। समर्थ जहां खड़े थे वहीं से विश्वनाथ जी को व ब्राह्मण पुजारियों को प्रणाम कर लौट पड़े। उनके लौटते ही रुद्राभिषेक करने वाले ब्राह्मणों को शिवलिङ्ग के दर्शन अलभ्य हो गये। सब लोग घबड़ाये। इस पर कुछ ब्राह्मण समर्थ रामदास के पास दौड़े गये और उन्हें क्षमा प्रार्थना करके विश्वनाथ जी के मन्दिर में ले आये। वहां पहुंच कर समर्थ ने सबको विश्वनाथ जी की प्रार्थना करने का उपदेश दिया। थोड़ी ही देर पीछे सब को शिवलिङ्ग का दर्शन हुआ और वे रामदास की प्रशंसा करने लगे। कुछ दिन वहां ठहर कर समर्थ फिर यात्रा को चल पड़े। ऐसे ही एकबार जब समर्थ रामदास पर्यटन करते हुए पंजाब के ग्राम-नगरादि देखते श्रीनगर पहुंचे तब वहाँ नानकपंथी साधुओं ने उनसे वेदान्त विषयक गूढ़ प्रश्न पूछे और अनेक शङ्कायें कीं। श्रीरामदास ने उनकी शंकाओं का समाधान बात की बात में कर दिया। नानकपंथी साधु इनका अध्यात्म निरूपण सुनकर इतने मोहित होगये कि उन्होंने रामदास से दीक्षा व गुरुमंत्र देने की विनम्र प्रार्थना की। इस पर निरभिमानी परम भक्त श्रीसमर्थ रामदास ने उन सिक्ख-गुरुओं को सम्बोधित करके कहा–'आप लोगों के गुरु श्रीनानक हैं जिन्होंने अपने पुण्य-प्रताप और भक्ति-बल से विधर्मियों से भी 'राम राम, कहलाया है। क्या वह उपदेश आप लोगों के लिये यथेष्ट नहीं है उन्हीं राम का भजन करते हुए लोकोद्धार के कार्य करते हुए आप लोग नानक पंथ की सार्थकता करो।"

बारह वर्ष की तीर्थ-यात्रा से लौटकर समर्थ रामदास पंचवटी में पहुंचे और उन्होंने पंचगंगा का स्नान कर श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन किये। दर्शन

करते समय उन्होंने प्रार्थना करते हुए कहा–"भगवन् आपकी कृपा से अनेक तीर्थों की यात्रा करके, अनेक विधि-विधान करके, अनेक पुण्य शील कर्म करके मैं बारह वर्षों में सकुशल लौटा हूं। हे देव! मैं इन कर्मों के फल स्वरूप सम्पूर्ण पुण्य को आज आपके चरणों में समर्पण करता हूं।" इस प्रकार निस्पृह रामदास ने कर्म को ईश्वरार्पण बुद्धि से करने का उत्कट उपदेश दिया। तदनन्तर वे अपने गांव 'जांब' में पहुंचे और उनने अपने बन्धु व माता से भेंट की। इस समय उनकी अवस्था ३६ वर्ष की थी।

अब समर्थ रामदास लोकोद्धार के कार्य में लग गये। उन्होंने महाबलेश्वर, वाईक्षेत्र, माहुली, कहाड़ प्रान्त और चाफल आदि स्थानों में कुछ काल रह कर बहुत से लोगों को भक्ति मार्ग का उपदेश दिया और भजन मंडलियां स्थापित कीं। प्रत्येक स्थान में उन्होंने 'मारुति जी' की मूर्तियां स्थापित कीं और संघ बनाये। चाफल में रह कर समर्थ ने हजारों निस्पृह शिष्य और महन्त बनाकर उन्हें लोकोद्धार के कार्य करने की शिक्षा दी। उनके प्रयत्न से सैंकड़ों स्थानों में मठ स्थापित होगये। इस प्रकार भजन और उपासना मार्ग की वृद्धि करके उनने लोगों को स्वधर्म में नियुक्त किया। स्वधर्म की जागृति से हिन्दू जनता में एकता और स्वाभिमान के भाव जागृत होगये। स्वतंत्र धर्म राज्य की स्थापना के इच्छुक होगये इस प्रकार श्रीसमर्थ के प्रयत्न से धर्म और स्वतंत्रता के भाव हिन्दू जाति में उत्पन्न होगये और एक नवीन क्रान्ति की लहर उठी।

समर्थ रामदास की कीर्ति इस समय सम्पूर्ण दक्षिण भारत में फैल गई थी! जिस समय समर्थ चाफल में रह कर लोकोद्धार के कार्य कर रहे थे उस समय महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी हिन्दू स्वराज्य की स्थापना में बहुत कुछ सफल हो चुके थे। उन्होंने मुगलों से रायगढ़ का प्रसिद्ध दुर्ग छीन लिया था और प्रतापगढ़ में एक नवीन सुदृढ़ दुर्ग बनवाकर वहां भवानी देवी की मूर्ति की स्थापना की थी। इसके सिवाय उन्होंने नासिक से करवीर तक का सम्पूर्ण प्रान्त व कोंकण का कुछ भाग अपने अधिकार में कर लिया था। स्मरण रहे कि वीर केशरी शिवाजी बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे और राज्य सम्पादन के महान् कार्य में व्यस्त रहते हुए भी वे सन्त-समागम के अवसर को हाथ से न जाने देते थे। वे स्वयं संतों के दर्शनों को जाते और श्रद्धापूर्वक उनके उपदेश सुनते थे। महान् संतों को वे अपने यहां बड़े आदर से बुलवाते और उनका यथोचित सत्कार कर उपदेश ग्रहण करते थे। समर्थ की अत्यन्त कीर्ति सुन कर शिवाजी की प्रबल इच्छा उनके दर्शनों की हुई और उनने पत्र भेजकर समर्थ को अपनी राजधानी में बुलवाया पर समर्थ रामदास वहां न गये। उन्होंने शिवाजी को पत्रोत्तर दिया जिसमें उन्होंने शिवाजी को स्वधर्म और साधुजनों की रक्षा करने व अन्यायी दुष्टों को दमन करने का उपदेश दिया था। साथ ही यह भी लिखा था कि यदि आप शुद्ध अन्तःकरण से धर्मरक्षा का कार्य निरभिमान होकर करोगे तो भगवान् रामचन्द्र जी आपको पूर्ण सफलता देंगे।" इस पत्रोत्तर से शिवाजी के मन में समर्थ के दर्शनों की उत्कण्ठा और भी बढ़ गई। पर समर्थ का दर्शन हो कैसे? वे स्वयं

शिवाजी के यहां पहले पहल आने को तैयार न थे और शिवाजी को उनका एक स्थान में मिलना कठिन था क्योंकि वे सदैव पर्यटन करते रहते थे और भक्ति के आवेश में चाफल के निकट के वन पर्वतों की दरी और कन्दराओं में घूमते घामते रहते थे। शिवाजी अनेक बार चाफल पहुंचे पर समर्थ का दर्शन न हुआ। अन्त में एक दिन छत्रपति शिवाजी समर्थ रामदास के दर्शन किये बिना अन्न जल ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा करके घर से निकले और चाफल के घने जंगलों में समर्थ को ढूंढ़ने लगे। बड़ी कठिनता से जंगल में भटकते भटकते जब शिवाजी विह्वल होगये तब उन्हें वन में एक औदुम्बर वृक्ष के नीचे समर्थ रामदास के दर्शन हुए। शिवाजी दौड़ कर उनके चरणों में गिरे और समर्थ ने शिवाजी को उठा कर हृदय से लगा लिया। वहीं शाके १५७१ वैशाख शुक्ला नवमी गुरुवार के दिन समर्थ ने शिवाजी को मंत्रोपदेश दिया। मंत्रोपदेश के उपरान्त वे शिवाजी से बोले आप क्षत्रिय हो! आपका कार्य राज्य-सम्पादन कर सत्ता के बल से धर्म की स्थापना करने का है। आप गो ब्राह्मण की रक्षा करो और प्रजा का कष्ट दूर करो परमात्मा का विश्वास करो और निरभिमान होकर लोकोद्धार करो। भगवान् राम आपको सफलता देंगे।" अन्त में शिवाजी का अत्यन्त आग्रह देखकर वे सितारा के पास सज्जनगढ़ के किले में रहने लगे। शिवाजी ने वहां एक विशाल मठ बनवा दिया। वहां रहते हुए समर्थ ने पूर्ण स्वतंत्रता रखी। वे सदैव पर्यटन करते और भिक्षावृत्ति से निर्वाह करते थे। शिवाजी से उनका सम्बन्ध किस प्रकार का था यह बात निम्नलिखित घटना से स्पष्ट हो जावेगी।

अपूर्ण

हिन्दू-संगठन का मूल-मंत्र

[ले० लाला श्री अयोध्याप्रसाद जी अग्रवाल, एडवोकेट]

स्वतन्त्रता की लहर आजकल ज़ोरोंपर है। हम लोग स्वतन्त्रता के लिये व्याकुल हो रहे हैं। ईश्वर करे कि हमें स्वतन्त्रता प्राप्त हो, परन्तु क्या स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर भी हम आराम से बैठ सकेंगे? हिन्दू-मुसलमानों में शान्ति से निभ सकेगी? या इससे भी अधिक सिर—फुटबौल होने लगेगी? यह एक ऐसा विकट प्रश्न है, जिसका हल करना आसान नहीं। स्वतन्त्रताके दावेदार इसका यह उत्तर देते हैं कि अभीतक हिन्दुओं और मुसलमानों के मस्तिष्क में दासताने घर कर रक्खा है, स्वतन्त्र होने पर दोनों स्वयं संभल जायँगे। स्वतन्त्रता के नेता पूज्यपाद महात्मा गान्धीजी के सामने भी यह प्रश्न कई बार आया और उन्होंने सदा यही कहा कि 'अल्पसंख्यक जातियां जो मांगती हैं, उन्हें दे दो।' परन्तु महात्माजी के इस विचार में बहुतेरे हिन्दुओं को भय दिखाई देता है। पञ्जाब में भाई परमानन्द एम० ए० समझते हैं कि 'यह स्वतन्त्रता हिन्दुओं को

बहुत महंगी पड़ेगी' और वह स्वप्न देखते हैं कि 'इस छोटी स्वतन्त्रता को प्राप्त करके उन्हें केवल हिन्दुस्तान के ही मुसलमानों का सामना नहीं करना है, बल्कि उन्हें उन सारी अर्द्धसभ्य जातियों का भी सामना करना पड़ेगा, जो हिन्दुस्तान के समकक्ष या उनकी पीठ पर हैं।' भाई परमानन्द जी का स्वप्न बिलकुल निराधार नहीं है। हमारे मुसलमान भाई मुसलमानी सुविधाओंपर अन्य सारी सुविधाओं को बलि करने के लिये तैयार हैं और समय-समय पर ऐसी-ऐसी माँगें उपस्थित करते रहते हैं, जिनके परिणाम-स्वरूप हिन्दुओं की अधिकारहीनता होती है; अब प्रश्न यह है कि क्या इसकी कोई ओषधि है? और यदि है तो क्या है?

मेरे अपने विचार में जहां एक ओर दासता बुरी है, वहां दूसरों से डरकर अपने वास्तविक अधिकारों से हाथ खींचना भी भयप्रद है, किन्तु इस किंकर्तव्यविमूढ दशामें पड़े रहना भी कम भयप्रद नहीं। अतः इसी की ओषधि करनी होगी। परन्तु ओषधि प्रारम्भ करने के पहले रोग का निदान कर लेना उचित होगा; इसलिये पहले इस बात पर विचार करना चाहिये कि अल्पसंख्यक जातियाँ क्यों ऐसी माँगें उपस्थित करती हैं और क्यों वह बहुसंख्यक हिन्दुओं की परवा नहीं करतीं तथा उनकी सुविधाओं की उपेक्षा कर अपनी सुविधाओं पर उनको बलि कर देना चाहती हैं। मेरे विचार से इसका कारण, और प्रायः एकमात्र कारण यही है कि हिन्दू शक्तिहीन हैं, इनमें प्रेम और एकता नहीं। असंख्य सम्प्रदाओंने हिन्दुओं के जातीय जीवन को नष्ट कर दिया है। इनकी जातीय-शक्ति छिन्न-भिन्न हो चुकी है। इनमें कोई एक केन्द्रीय प्लेटफार्म जहाँ नहीं, सब इकट्ठे हो सकें। कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं, जिस पर सब एकमत हो सकें, कोई ऐसा नाम नहीं, जिसके झण्डे-तले सब एकत्र हो सकें। सारांश यह कि इनकी दशा बड़ी ही शोचनीय है, यहां तक कि इस समय 'हिन्दू' शब्द की परिभाषा करना भी कठिन हो गया है। पञ्जाब-हिन्दू-सभा के पहले अधिवेशन के अवसर पर मैंने 'हिन्दुस्तान' में एक लेख–'हिन्दू कौन है?' शीर्षक लिखा था। मुझे स्मरण है उस समय पञ्जाब के कतिपय प्रमुख महाशयों ने 'हिन्दू' शब्द की परिभाषा करने की चेष्टा भी की थी, परन्तु सफलता नहीं मिली।

आप कदाचित् कहें कि हिन्दुओं के धार्मिक विचारों में विभिन्नता तो प्राचीनकाल से चली आती है। यह ठीक है कि हिन्दुओं में विचार-स्वातन्त्र्य के रोकने की कभी चेष्टा नहीं की गयी। हिन्दुओं में आत्मवादी से लेकर अनात्मवादी तक पहलेही से मौजूद हैं; परन्तु वह वस्तु जो समस्त हिन्दुओं को एक जाति बनाये हुए थी वह इसके सामाजिक बन्धन अर्थात् संस्कार थे। बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत विपिनचन्द्र पाल महाशय अपनी पुस्तक Soul of India के पृष्ठ ६५ पर लिखते हैं कि—

But while granting the utmost freedom .....of thoughts and institutions, the Aryan Nation builders took great care to ordain certain rules and rituals, certain sacrements and ceremonies that were binding upon all the

section of the expanding Aryan Society and that sought to preserve and strengthen their fundamental Unity.

'इसका भावार्थ यह है कि आर्य-जाति निर्माता ऋषियोंने विचार और सम्प्रदाय के विषय में विशेष स्वतन्त्रता देते हुए इस बात का विशेष रूप से विचार किया था। विशेष-विशेष नियमों को, सामाजिक आचार-व्यवहार और संस्कारों को ऐसा बनाया था जो आर्य-संस्था के प्रत्येक श्रेणी के उदार विचारवाले के लिये उपयुक्त थे और जिनके बन्धनसे एकताकी नींव सुदृढ़ की गयी थी।' इसी प्रकार डा० एनी बेसेण्ट महोदया अपनी पुस्तक 'Hindu Ideals' के पृष्ठ १४२पर हिन्दुओं के विभिन्न दर्शनों और तत्वज्ञान के प्रसंग में कहती हैं कि–

"In conduct and in social life however great strictness has been enforced and this has given stability to nation."

अर्थात् 'सामाजिक जीवन और आचार-व्यवहार में यद्यपि बड़ी ही कड़ाई से काम लिया गया है, तथापि इससे जाति में जीवनीशक्ति प्राप्त हुई है।'

परन्तु यद्यपि इन सामाजिक बन्धनोंने आज-तक हिन्दुओं की जातीयताको बनाये रक्खा है और इनके कारण सहस्रों शताब्दियों से अब तक हिन्दू जीते-जागते दिखलायी देते हैं, और संसार की असंख्य और प्रभावशाली जातियां जो इसके बाद पैदा हुई वे नष्टप्राय हो गयीं, तथापि (इसका विचार न कर) हम हिन्दू आज अपने आचार-व्यवहार को पसन्द नहीं करते, और हमें यह देखते हुए दुःख होता है कि प्रायः सब-के-सब शिक्षित पुरुष आये दिन इसको तोड़ने की चेष्टा में लगे हैं।

इन सामाजिक बन्धनों से हमें घृणा क्यों हुई?–इसके लिये बड़ी खोजकी आवश्यकता नहीं। हिन्दुओं को शताब्दियों तक मुसलमानी शासनकी दासता करनी पड़ी और आजकल ईसाई शासन सिर पर मौजूद है। मुसलमानी बादशाहों के समय में हमारी संस्कृति को मटियामेट कर देने के लिये जो कुछ किया गया वह एक दुःखप्रद कहानी है, जिसके दुहराने की आवश्यकता नहीं। इसके बाद ईसाइयतका दौर-दौरा हुआ; मिशनरी साहबों की चाँदी इस बात में थी कि सामाजिक बन्धन टूट जायँ, क्योंकि इसके बिना उनकी भरती असम्भव थी, उन्होंने इसके पूरा करने में कोई कसर उठा न रक्खी, दूसरी ओर आजकल के ईसाइयों के भोग-विलास के जीवनने हमें मोहित कर लिया–उनके खान-पानकी स्वतन्त्रता, उनके रहन-सहनके ढंग, उनके विलासिताके सामान ने हमारे मन और हृदय पर अधिकार कर लिया, और ईसाई समाजने हमारी राजनीतिक विजय Political conquest करते-करते हम पर सामाजिक विजय (Social conquest) भी प्राप्त करली। पञ्जाब के प्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल साहबने क्या ही ठीक कहा है कि हिन्दुस्तान की राजनीतिक विजयसे अधिक भयानक हिन्दुओं पर पाश्चात्य सभ्यता की सामाजिक विजय है। मुसलमान और ईसाई दोनों सामाजिक संस्कारों पर निर्भर नहीं हैं, उनकी जड़ अपने एक विश्वासपर है। मुसलमानों के यहाँ

जो मुहज़रत हम्मद साहब के उपदेशों में श्रद्धा रखता है वह मुसलमान है, और इसी प्रकार ईसाइयों में जो हज़रत ईसाके कथन पर विश्वास करते हैं, ईसाई हैं। इसलिये यद्यपि उनमें भी सम्प्रदाएँ हैं तथापि उनके होते हुए भी वह इन विश्वासोंके कारण छिन्न भिन्न नहीं हैं। मुसलमान हज़रत मुहम्मद साहब और ईसाई हज़रत ईसाके नामपर एक हैं और सदा-सर्वदा एक हो सकते हैं, इसलिये उनमें एकता है, और इसी कारण उनमें शक्ति और प्राण हैं। परन्तु हमारे यहां ऐसा नहीं। यदि हिन्दू जातीयता का आधार भी ऐसा होता, और हिन्दुओं के विभिन्न सम्प्रदाय विभिन्नता के होते हुए भी किसी एक केन्द्रपर इकट्ठे हो सकते तो कदाचित् इन सामाजिक बन्धनों के टूटने से इतनी हानि न होती। परन्तु चूँकि हमारी जातीयताके आधार ही यह सामाजिक संस्कार और बन्धन हैं, इसलिये प्रकृतितः इस आधार के डांवाडोल हो जाने पर हमारी जातीयता के नष्ट होने की आशंका ठीक ही है।

अब प्रश्न यह है कि क्या हिन्दुओं का भी कोई केन्द्र बन सकता है, जहां नाना सम्प्रदायों और भेद-भावों के रहते हुए भी हम इकट्ठे हो सकें, अथवा दूसरे शब्दों में क्या हम इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि हिन्दुओं का हिन्दुत्व क्या है? क्या हमारा कोई ऐसा एक केन्द्रीय प्लेटफार्म बन सकता है जिसके नामपर हम इकट्ठे होकर एक दूसरे को भाई समझते हुए कन्धे-से-कन्धा मिला सकें? पुराने सामाजिक बन्धन जो हमारे विभिन्न दर्शनों और सम्प्रदायोंके होते हुए भी एक सम्मिलितजाति बनाये हुए थे, उनका नये सिरेसे प्रचार करना अत्यन्त कठिन है, और कदाचित् आधुनिक युग में असम्भव भी है, बहुतेरे महाशयों के विचार में वे व्यर्थ हैं। परन्तु यह भी आत्मघात से भी बुरा होगा यदि हम हिन्दुओं की जातीयताके केन्द्र खोजने के विचार से मुँह मोड़ लें। मैं तो समझता हूं कि समस्त संस्थाएँ जो हिन्दुओं की कुशलता-कल्याण के लिये दौड़-धूप कर रही हैं, उनकी सारी चेष्टाएँ यद्यपि वे बड़े सद्भाव से की जा रही हैं, व्यर्थ हैं; कदाचित् एक केन्द्र स्थापित किये बिना यह सब हमें अनजाने ही पाश्चात्य सभ्यता में मग्न होने और अपनी संस्कृति को खो बैठने में सहायक सिद्ध हों।

परन्तु क्या हम पाश्चात्य सभ्यता के सामने से भाग सकते हैं, क्या हम इससे बिलकुल अलग होकर रह सकते हैं? संसार की वर्तमान दशा से हमें मालूम होता है कि ऐसा कदापि सम्भव नहीं। हां, आवश्यकता यह है कि जहां एक ओर हम पाश्चात्य सभ्यता में, बढ़ें, वहां दूसरी ओर उसकी विशेषताओं पर भी विचार करें और उनको हिन्दू रूप देकर अपनाने का साहस उत्पन्न करें। कुछ ही दिन हुए दक्षिण अमरीकाका परिदर्शन करते हुए ब्रेज़िल-देश में प्रिंस आव् वेल्सने वृटिश-प्रदर्शनीका उद्घाटन करते हुए अपनी जाति के लिये यह आदर्श उपस्थित किया है–('Adopt, adapt, improve' अर्थात् 'ग्रहण करो, अपनाओ और उन्नत बनो।

हिन्दू-सभ्यता के उपासक सर जान उडरफ (Sir Johnwodroff) महाशय अपनी पुस्तक 'Is India civilised?' में इसी सिद्धान्तपर विवाद करते हुए लिखते हैं कि अपनाने के लिये भी अपनानेवाली

व्यक्ति बलिष्ठ होना चाहिये, और यह तभी हो सकता है कि हिन्दू कम-से-कम प्राचीन हिन्दू-संस्कृति के बीजमात्र को बनाये रक्खें। और यदि हम इस बीजको बनाये नहीं रख सकते तो उपर्युक्त सज्जन के शब्दों में– 'Her death approaches, Her last breath will help to unify other Living forms' अर्थात् उसकी (हिन्दू जातिकी) मृत्यु समीप है, उसका अन्तिम सांस दूसरी जीवित जातियों में एकता प्रदान करेगा।

परन्तु हिन्दू जातिको जीवित रखने के ही दृष्टिकोण से नहीं, हिन्दू-शास्त्र भी बार-बार यह पुकार रहे हैं कि कलियुग में धर्म केवल बीजरूप से स्थित रहेगा; इसलिये शास्त्रानुसार भी यह आवश्यक है कि हम इस बीजकी रक्षा करें। और मैं समझता हूं कि यह बीज ही एक ऐसा केन्द्र है जिस पर सब हिन्दू इकट्ठे हो सकते हैं।

अब प्रश्न यह है कि वह केन्द्र क्या है परन्तु केन्द्र के खोजने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि उस केन्द्र-की विशेषताएँ क्या हैं, मेरे निजके विचार में कुछ निम्नाङ्कित विशेषताएँ हो सकती हैं–

१–वह केन्द्र ऐसा उत्कृष्ट हो कि इसे मान कर हम सबके सामने गर्व से सिर ऊंचा कर सकें।

२–प्राचीन हिन्दूसभ्यता से वह हमारा सम्बन्ध न टूटने दे।

३–उसमें ऐसी अधिक बाधाएं और कड़े नियम न हों जिन्हें हमको प्रत्येक आनेवाली सभ्यता के सामने तोड़ना पड़े; बल्कि वह प्रत्येक आनेवाली सभ्यताको अपना सके।

४–प्रत्येक मनुष्य को अच्छा नागरिक बना सके, और साथ ही आध्यात्मिक मार्ग की ओर भी जो हिन्दू-संस्कृति की उत्कृष्टतम पूंजी है, अग्रसर कर सके।

५–समस्त हिन्दू-सम्प्रदाय उसको सहज ही स्वीकार कर सकें, अर्थात् वह उनके नियम और आचार-व्यवहार में बहुत ही कम हस्तक्षेप करता हो।

६–सर्वसाधारण की उस तक पहुंच हो सके, लेकिन साथ ही वह महान-से-महान् दार्शनिक के लिये भी मार्गदर्शी हो।

७–वह केन्द्र ऐसा हो कि उसके चतुर्दिक एक सुविस्तृत क्षेत्र हो, और वह विश्वकेन्द्र बनने की भी योग्यता रक्खे।

इन विशेषताओं को सामने रखते हुए अब देखना यह है कि ऐसा केन्द्र क्या हो सकता है। मैंने एक सीमा तक हिन्दुओंकी उन्नति-अवनतिका समय, वर्तमान सभ्यता का स्वरूप तथा कुछ अंश तक हिन्दू-शास्त्रों का अध्ययन किया है, और मैं इस परिणामपर पहुंचा हूं कि ऐसा केन्द्र श्रीमद्भगवद्गीता ही बन सकती है।

कदाचित् कोई सज्जन कह उठें कि वेद ईश्वरीय ज्ञानका ग्रन्थ है उनका नाम मैंने क्यों नहीं लिया? इसके लिये मेरे पास बहुत से कारण हैं, परन्तु यहाँ मैं केवल इतना ही कहकर बस करूंगा कि वेद बड़े ही विशाल (Volumous) ग्रन्थ हैं, और इस पर भी उनकी भाषा बहुत प्राचीन है, उनके ठीक अर्थोंका पता लगाना और स्पष्ट समझ लेना एक अच्छे योग्य पुरुष के लिये भी एक जीवनका काम नहीं, फिर सर्वसाधारण की क्या बात? हमारे यहां पञ्जाब में तो वर्षों से सनातन-धर्म-सभा और आर्यसमाज में उनके अर्थों के सम्बन्ध में झगड़ा चल रहा है; परन्तु आज

तक कोई परिणाम नहीं निकला। इसलिये इस अन्धाधुन्द में जब कि रोटी का प्रश्न ही अत्यन्त कठिन हो गया है तो वेदों के समझने के लिये समय निकालना प्रायः असम्भव है। और इसलिये केवल उन भाग्यशाली विद्वानों के जो रोटी के प्रश्न से मुक्त हैं वेदों तक और प्रायः किसी की पहुंच नहीं। विपरीत इसके श्रीमद्भगवद्गीता बहुत ही छोटी-सी पुस्तक है, इसमें केवल सात सौ श्लोक हैं और इसमें सभी प्रसिद्ध विषय पूर्णरूप में पाये जाते हैं। गीता की आधारशिला पातालतक पैठी हुई है क्योंकि इसका आधार ऐसा सुदृढ़ है कि उसी दिनसे, जिस दिन इसे श्रीभगवान ने गाया, आज तक हिन्दुस्तान में जो विद्वान् या आचार्य हुए हैं सभी इसकी आध्यात्मिकता के सामने नत-शिर हुए हैं। विभिन्न पुराणों में वेदव्यासजी ने इसकी प्रशंसा बड़ी ही सुन्दरता के साथ की है। अद्वैतमत के आचार्य श्रीशङ्कर, विशिष्टाद्वैतके आचार्य श्रीरामानुज तथा शुद्धाद्वैत के आचार्य श्रीवल्लभ प्रभृतिसे लेकर आधुनिक कालीन नेता स्वर्गीय बालगंगाधरजी तिलक तथा महात्मा गान्धी तक सबके सब इस पर न्यौछावर हैं और सबने इस पर भाष्य लिखने में अपने आपको कृतार्थ माना है। हिन्दुस्तान ही क्यों, दूसरे देशवासी सज्जनों में भी जिसने इसका अवलोकन किया है वही प्रशंसक बन गया है। संसार के सभ्यदेश अमरीका, जर्मन, इंग्लैण्ड आदि के विद्वान इसके दर्शन को बड़ी नम्रता और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। यदि मैं उन सबकी सम्मति लिखने लगूँ। तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बन जाय, इसलिये केवल एक देशी और एक विदेशी महाशय की सम्मति का उद्धरण कर ही बस करूंगा। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् और बुद्धिमान् विलियम वान हमबोल्ट साहब कहते हैं-

'The Bhagwad Gita is the deepest and the sublimest production that the world possesses, I read it with permanent feeling of gratitude towards fate that has let me live in order to steady this book.'

अर्थात् संसार के पास सबसे अधिक प्राचीन और महान् ग्रन्थ भगवद्गीता है, मैं अपने भाग्यको अत्यन्त धन्य समझता हूं कि उसने गीता के अवलोकन करने के लिये जीवन प्रदान किया है।

इसी प्रकार हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध और मननशील विद्वान् साधु श्री टी० एल० वास्वानी महोदय कहते हैं—

'The marvels of Sciences the wonders of Science are many. But I believe I do not exaggerate when I say that all the wonder, all the marvells of Science are less wonderful, less marvelous than the wonderful marvellous book, the Bhagwad Gita.

अर्थात् विज्ञान के चमत्कार और उसके अद्भुत आविष्कार बहुत-से हैं, परन्तु मुझे विश्वास है कि मैं अत्युक्ति नहीं करता, जब मैं कहता हूं कि विज्ञान के सभी चमत्कार और अद्भुत आविष्कार उस आश्चर्यजनक चमत्कारिक पुस्तक भगवद्गीता के सामने उतने आश्चर्यजनक और चमत्कारिक नहीं हैं।

सारांश यह कि यह कथन बहुत ही ठीक है कि हिन्दू संस्कृति के लिये जो प्रतिष्ठा इस समय संसार में प्राप्त होती है, उसका सबसे बड़ा कारण यही भगवद्गीता है।

२–प्राचीन हिन्दू संस्कृतिका तो यह सार-रूप ही है, आजकल के लिये ही क्यों, प्राचीन हिन्दु शास्त्र भी यही पुकार रहे हैं। कोई इसको वेदत्रयी कहता है, और कोई सर्वशास्त्रमयी। यह श्लोक तो सामान्यतः प्रसिद्ध ही है–

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

अर्थात् सब उपनिषदें गायें हैं, दुहनेवाले भगवान श्रीकृष्ण हैं, अर्जुन बछड़ा है और यह महान् अमृतरूपी दूध प्रत्येक विचारवान् पुरुष के लिये दुहा गया है।

३–भगवद्गीता में कोई बाधा नहीं, ऊंचे-से ऊंचा और नीच-से-नीच इसका अधिकारी है, यह अटल सिद्धान्त की पुस्तक है जिस पर कालका कोई प्रभाव नहीं। धर्म के दो भाग होते हैं एक सिद्धान्त (Principles), दूसरे व्यवहार (Practices) जो उन सिद्धान्तों के काम में लानेके लिये देश-काल के अनुसार बरते जाते हैं, इन व्यवहारों के सम्बन्ध में श्रीमद्भगवद्गीता में बड़ी स्वतन्त्रता है, अतः यह सदा सर्वदा मौलिक और नित नवीन बनी रहती है। संसार में नयी-नयी सभ्यताओं का उदय और अवसान होगा परन्तु इस पर उनका कोई प्रभाव न होगा, यह प्रत्येक सभ्यताको अपना ले सकती है। भारत के प्रसिद्ध योगी श्रीअरविन्द लिखते हैं—

'It is large, free subtle and profoud It is for all time and for all men, not for a particular age and country. Specially it is breaking free from external forms, details, dogmatic notions and going back to principles and the great facts of our nature and our being'

'The Gita is a book that has worn extra ordinarily well and it is always as fresh and still in its real substance, quite as new as when it first appeared.

अर्थात् 'यह बड़ी स्वतन्त्र, सूक्ष्म और गंभीर पुस्तक है। यह सब युगोंके लिये और सब जातिके लिये है, किसी युगविशेष और देशविशेषके लिये नहीं, क्योंकि यह आडम्बर, पुनरावृत्ति, तथा साम्प्रदायिक-भावसे मुक्त है, तथा यह हमारे स्वभाव और जीवनके महान तत्वों और सिद्धान्तों के जड़तक चली गयी है।'

'गीता एक ऐसी पुस्तक है, जिसने अद्भुत ख्याति प्राप्त की है, यह सदा अपने तात्विक गम्भीर और सुन्दर रूप में रहती है, और ठीक उसी प्रकार नये रूप में दीख पड़ती है जैसी यह प्रथम प्रकट हुई थी।'

४–प्रत्येक मनुष्य को सुन्दर नागरिक बना सके और साथ-ही साथ आध्यात्मिक पथ की ओर ले जा सके इस प्रकार की पुस्तक संसार भर के ग्रन्थों में गीता ही हो सकती है। प्रायः लोग ऐसा विचारते हैं कि–

हम खुदा ख्वाही वहम दुनियांव दूं।
ई ख्यालस्त वो मोहालस्त वो जनूं॥

अर्थात् 'दुनियाँ के साथ-साथ भगवान् की अभिलाषा करना—यह एक खयाल है, दुर्लभ और पागलपन है।' लेकिन गीता के तत्व ने इस विचार को ही पागलपन सिद्धकर दिखाया। भगवद्गीता का उपदेश जंगल में बैठकर किसी विरागी या संन्यासी को नहीं दिया गया था, इसका उपदेश युद्धक्षेत्र में युद्धके नायक को दिया था, जिससे वह युद्ध करता हुआ भी परमपद को हाथ से न जाने दे। वस्तुतः संसार में जीवनयुद्ध में लगे हुए पुरुष के लिये ईश्वर प्राप्ति किस तरह सम्भव है, यह तत्वचिन्तन ही भगवद्गीता का महत्व है, और स्वर्गीय श्री बाल-गंगाधर तिलक ने इस सिद्धान्तका अत्यन्त विस्तार पूर्वक 'गीतारहस्य' में सिद्ध किया है।

५-समस्त हिन्दू सम्प्रदाय अब भी इसको मानते हैं, सबने अपने-अपने पक्ष की सिद्धि के लिये इसपर अपना भाष्य लिखा है, परन्तु किसी ने इसके प्रामाण्यको (authority) अस्वीकार करने का साहस नहीं किया। भगवद्गीता वस्तुतः ऐसी अवस्था में लिखी ही गयी थी, जब भारत में नाना मत प्रचलित थे, और यह सर्वसम्मत है कि गीता में उन सबका समन्वय बड़ी खूबी के साथ हुआ है, और इसीलिये सब सम्प्रदाय इसका आदर करते चले आये हैं, और इसे प्रस्थानतत्रयी में स्थान प्राप्त हुआ है।

६-भगवद्गीता एक सरल और अत्यन्त छोटी पुस्तक है, सम्मान्य पुरुष भी इससे लाभ उठा सकते हैं, उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है। बड़े से बड़ा दार्शनिक भी अपना पूर्ण मस्तिष्क लगाकर इसकी तत्व-गम्भीरता का पार नहीं पा सकता।

७-भगवद्गीता हिन्दू-जातिका ही नहीं, किन्तु संसार का केन्द्र बन सकती है। इस अवसर पर मैं केवल एक विदेशी विद्वान् की सम्मति लिखना ही बस समझता हूं, क्योंकि लेखका विस्तार पहले ही कुछ बढ़ गया है। श्री एफ० टी० ब्रूक्स साहब अपनी पुस्तक 'Gospel of life' में लिखते हैं—

'Not only Bhagwat Gita fulfils every condition needed for becoming a national asset of nation life. It is pre-eminently a scripture of future world religion, a gift of India's glorious past to the moulding of still more glorious future of mankind.'

अर्थात् 'भगवद्गीता न केवल हिन्दुस्तान की जातीय धर्मपुस्तक बनने के लिये समस्त शर्तों को पूरा करती है, और जातीय जीवन की पूँजी है। यह हिन्दुस्तान के अतीतकालीन स्वर्णयुग के सन्देश के रूप में मानवजीवन के भविष्यको अधिकाधिक उज्ज्वल बनाने के लिये प्रदान की गयी है, यह भविष्य के सार्वभौम धर्मकी प्रसिद्ध धर्म पुस्तक है।'

इस प्रकार मैं समझता हूं कि बिखरे हुए हिन्दूसमाज को संगठित करने और उसे एक जीती-जागती जाति बनाने के लिये श्रीमद्भगवत्-गीतामात्र है जो अत्यन्त सुभीते से सुन्दर और सुदृढ़ केन्द्र बन सकती है। परन्तु गीता का उल्लेख करते हुए हमें भगवान् श्रीकृष्ण को भी बीच में लाना ही होगा। वस्तुतः हिन्दू-केन्द्र किसी ऐसे व्यक्तित्व को (Personality) अपने सामने रक्खे बिना पूरा भी नहीं हो सकता, जिसके लिये हम बलि

होने को तैयार हो जायँ और जिसके सामने हमारे सिर श्रद्धा से झुक जायँ और जिसके नाम पर हम एक स्वर से बोल सकें। ऐसा नाम भगवान् श्रीकृष्ण के सिवा और नहीं मिल सकता। सारे हिन्दू-इतिहास में भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कोई ऐसा सर्वोत्कृष्ट व्यक्तित्व नहीं, जिसने हिन्दूमात्र के हृदय में इस प्रकार गम्भीर उच्च स्थान प्राप्त किया हो। भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में एक हिन्दू कविने तो यहां तक कह दिया है कि–

ईश्वरको भुला सकते हैं हिन्दू तो भुला दें।
लेकिन नहीं मुमकिन कि कन्हैयाको भुला दें॥

सारांश यह कि, भगवान् श्रीकृष्ण का नाम हिन्दुस्तान में घर-घर, बच्चे-बूढ़े, धनी-निर्धन सब की जिह्वापर रहता है; यद्यपि कोई इनको पूर्ण अवतार मानता है और कोई नहीं मानता, परन्तु इतना तो अवश्य है कि सारे मतभेदों के होते हुए भी 'श्रीकृष्ण आदर्श पुरुष हैं'–इसमें प्रायः सभी एक मत हैं। मैं भगवान्को पूर्ण अवतार मानता हूं, और मैं सदा चाहता हूं कि जो ऐसा मानते हैं वह इस विश्वास से तनिक भी विचलित न हों। परन्तु मैं हिन्दू-केन्द्रको मतभेद से परे रखना चाहता हूं, इसलिये मैं इस केन्द्र में भगवान् को एक भूले हुए रूप में उपस्थित करना चाहता हूं।

मैं देखता हूं, कि संसार जगद्गुरु (world teacher)में विश्वास करता है। कोई भगवान बुद्ध को जगद्गुरु कहता है; कोई हज़रत ईसाको तो कोई शङ्कराचार्य को, और यह महान व्यक्ति यदि जगद्गुरु है तो एक हिन्दू के लिये भगवान् कृष्ण को परम जगद्गुरु मानने में कब आपत्ति हो सकती है? इसलिये मैं समझता हूं कि यदि हिन्दू-केन्द्रके प्रश्न को इस प्रकार रक्खा जाय तो मैं नहीं समझता किसी हिन्दूको किसी प्रकार की आपत्ति हो सकती है।

श्रीकृष्ण एव जगतां परमो गुरुः श्री–
गीतैव सारभरिता परमं सुशास्त्रम्।
इत्येव यस्य हृदये दृढनिश्चयः स्यात्
जेयं स हिन्दुरयमेव हि नः सुमन्त्रः॥

अर्थात्, श्रीकृष्ण जगत् के परम गुरु हैं, और श्रीगीता परम सार-शास्त्र है, यह जिसका निश्चय है वह हिन्दू है, यह हमारा सुन्दर मन्त्र है।'

परन्तु श्रीकृष्ण का नाम लेते समय मैं एक बात कहे देता हूं कि हमें भगवान् श्रीकृष्ण के यथार्थ जीवन का पता लगाना होगा, और मेरा अपना मत है कि भगवान् श्रीकृष्ण का ठीक जीवन गीता के प्रकाश (Light) में ही लिखा जा सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण का जो जीवन इस समय प्रसिद्ध है वह रसिक जनों के भावों से रंगा हुआ है, परन्तु भगवान् का जीवन एक पूर्ण आदर्श-जीवन है। भगवान् स्वयं गीता में कहते हैं–

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥
(श्री भगवद्गीता ४।९)

अर्थात् 'हे अर्जुन! मेरे जन्म-कर्म बड़े ही दिव्य हैं, इनको जो ठीक-ठीक जान लेता है, वह इस देह को छोड़ कर फिर आवागमन में नहीं पड़ता। मुझको ही प्राप्त होता है।' बल्कि गीता से यह ज्ञात होता है कि भगवान के कर्म करने का कारण ही यह है कि वह सांसारिक पुरुषों के सामने एक पूर्ण आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं, अतः आप ज्ञानी या योगी की उच्चतम अवस्था को इस-

प्रकार वर्णन करते हैं कि-

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।

अर्थात् 'जिसकी आत्मा में रति है, जो अपने आत्मा में ही तृप्त है और अपने आत्मा में ही सन्तुष्ट है उसका कोई कार्य शेष नहीं रहा। न तो उसे किसी कार्य के करने से ही सम्बन्ध है और न छोड़ने से ही।' परन्तु इस अवस्थापर पहुंचे हुए पुरुष के लिये भी भगवान् लोक-संग्रह अर्थात् जगत् की भलाई के लिये कर्म का विधान करते हैं, और इसका कारण यह बतलाते हैं कि श्रेष्ठ लोग जिस तरह का आचरण करते हैं, दूसरे लोग भी उसी तरह करने लगते हैं और वह जिस बातको प्रमाण मानते हैं दूसरे भी उसीका अनुसरण करते हैं। अतः उनका यह सिद्धान्त है कि जिस प्रकार अज्ञानी लोग काम में लगे रहते हैं, ज्ञानियों को भी उसी प्रकार मुस्तैदी से लगे रहना चाहिये, परन्तु सङ्गको त्यागकर केवल जगत् के कल्याण के लिये। उदाहरणार्थ अपने आपको उपस्थित करते हुए भगवान् कहते हैं कि-

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥
(अ० गी० ३ । २२)

अर्थात् हे अर्जुन! तीनों लोकों में मेरे लिये कुछ कर्तव्य नहीं, और न कोई प्राप्तव्य वस्तु ही ऐसी है जो मुझे प्राप्त न हो, परन्तु तिसपर भी मैं कर्म करता हूं।'

सारांश यह कि मेरे विचार में श्रीकृष्ण का जीवन मनुष्य-जीवन के लिये सर्वथा पूर्ण आदर्श है और मैं समझता हूं कि यदि उसको गीताके प्रकाश (Light) में लिखा जावे तो कोई कारण नहीं कि वह भगवान् बुद्ध और हज़रत ईसा की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठा क्यों न प्राप्त कर सके। पाठक मुझे क्षमा करें, मेरा तो अपना विचार है कि जहां भगवान् बुद्ध और हज़रत ईसाका जीवन एकदेशीय है, वहां भगवान् श्रीकृष्ण का जीवन सार्वदेशीय और सर्वभाव-सम्पन्न है।

अस्तु, इस लेखको मैं अधिक विस्तार न देकर अन्त में यह कहना चाहता हूं कि हिन्दूजाति के जीवित रखने के लिये सङ्गठित होने और अपने पांवपर खड़े होने की अत्यन्त आवश्यकता है और यह केवल सामयिक आवश्यकता ही नहीं, बल्कि हिन्दूजाति के जीवन के लिये यह परमोपयोगी है ताकि हिन्दूजाति प्रतिष्ठा पूर्वक अपना जीवन निर्वाह कर सके और दूसरी जातियां इसके अधिकार की ओर कुदृष्टि डालने का साहस ही न कर सकें। बल्कि वे उसकी मित्रता के प्राप्त कर लेने में गर्व समझें। मैं समझता हूं कि इस सङ्गठित जीवनके लिये एक (Central Hindu Church or Hindu National Church) हिन्दू धर्म के प्रधान केन्द्र का होना आवश्यक है, और मेरे विचार में ऐसा केन्द्र वही हो सकता है जिसका मैंने ऊपर वर्णन किया है। परन्तु यहां मेरा यह उद्देश्य नहीं कि मेरे अपने विचार को ही सब ठीक स्वीकार कर लें। मेरा इस लेखके लिखने का उद्देश्य केवल यही है कि हिन्दूजाति के विचारशील सज्जन इस बात पर विचार करें कि हिन्दूजाति के सङ्गठनके लिये एक हिन्दूधर्म के प्रधान केन्द्र (Central Hindu Church) की आवश्यकता है या नहीं। और यदि

है तो ऐसा हिन्दूधर्म का प्रधान केन्द्र (Hindu Central Church)कैसे बन सकता है। यह प्रश्न मैं अत्यन्त नम्रता के साथ हिन्दूजाति के विचारशील सज्जनों के सामने रखता हूं और आशा करता हूं कि इस पर सब लोग पूरा ध्यान देंगे। ताकि हम विचार पूर्वक आन्दोलन करते हुए किसी परिणाम पर पहुंच सकें, जिससे हिन्दू वस्तुतः एक जाति बन सकें और वह फिर एक बार संसार की जातियों के सामने गर्व के साथ सिर ऊँचा कर सकें और वह जातियों की घुड़दौड़ में कुचल न जावें।

जीवन धारा

[रचयिता श्रीमती ब्रजकुमारी "विदुषी"]

बहे जा जीवन गति की धार ॥

जिस अनन्त के पथ पर होती नीरव मृदु झंकार।
जिस उत्तुंग शिखर से उठती शीतल सरस फुहार ॥
मुखरित कुसुमों से होता जहँ शुचि पराग प्रसार।
चिर अनन्त साधन की अविरल बहे प्रेम रस धार ॥
दिव्य आलोक प्रकाशित नित "अज" प्रियतम के दरबार।
एक रूप होय जल पय मय जहँ प्रेमी प्राणाधार ॥

आनन्द पूर्वक मरना सीखो।

(ले० स्वामी आत्मानन्द जी)

इस असार संसार दुःखागार में जीवित रहना तो सभीलोग सीखते हैं किन्तु आनंद पूर्वक कैसे मरना होता है इसको भी मनुष्य मात्र को सीखना आवश्यक है।

एक महात्मा कहगये हैं कि इस जगत् में किस प्रकार जीना चाहिये इसे बताने के लिये तो सैकड़ों प्रकार के शास्त्र हैं, हजारों प्रकार की युक्तियां हैं तथा लाखों औषधियां हैं। जैसे वैद्यक शास्त्र आयुष्य बढ़ाने के लिये, पाक शास्त्र जिंदगी बचाने के लिये, खेती बारीकी विद्या जिन्दगी को सहायता देने के लिये, व्यापार की कला जीवन को सुखी करने के लिये और जगत् की दूसरी सब विद्यायें मनुष्य जाति को सुखी करने में सहायता पहुंचाने लिये हैं। इतनाही नहीं तन्दुरुस्ती विभाग के लोग कहते हैं कि रास्ता, घर साफ़ रखो गंदगी मत रक्खो, सर्दी गर्मी से बचो, आलस्य मत करो, भोजनोपरांत परिश्रम मत करो विषयों के गुलाम मतबनो, पेट साफ़ रखो, माथा ठंडा रखो, हाथ पैर गर्म रखो, कसरत करो,

शक्ति बढ़े फुरती लहे, चोटन अधिक पिराय।
अन्न पचे चंगा रहे, कसरत बड़ी सहाय ॥

छोटे छोटे जन्तुओं से बचो, नियम पूर्वक अच्छेपदार्थ खाओ, पूरी नींद से सोओ, कपड़ा शरीर साफ़ रखो; अशुद्ध वायु से बचो, ऋतु ऋतु का फल खाओ, उद्योग करो तथा वैद्यक के नियमों से चलो। इस प्रकार की शिक्षा देने वाली हजारों

पुस्तकें हैं। राज्य के बहुत से क़ानून बने हुए हैं, बहुत से प्रकार के हथियार तथा साधन हैं और लाखों विद्वान् इसी प्रकार का ज्ञान प्रचार करने के लिये भी भिन्न२ प्रकार से कार्य कर रहे हैं। भाइयो! यह सब किसलिये ऐसा प्रचार कर रहे हैं इस जगत् में जीवन किस प्रकार निर्वाह करना चाहिये, केवल यही बातें बताने के लिये उनका प्रचार है। निस्संदेह ये सब बहुत ही आवश्यक वस्तुयें हैं क्योंकि जीवन से ही सब कुछ है, जिंदगी रहने से ही सब सुख भोगा जा सकता है, जिंदगी रहने से ही परमार्थ और धर्म किया जा सकता हैं। जीवित रहने पर ही ईश्वरी ज्ञान प्राप्त किया जासकता है और तभी मोक्ष भी मिल सकता है। इससे जीवन को सुरक्षित रखने के नियमों का जानलेना बहुत ही आवश्यक है, किंतु याद रखो कि चाहे हम कितने ही दीर्घायु क्यों न हों एक न एकदिन हमें मरना तो अवश्य ही पड़ेगा इसे कभी भी भूलना न चाहिये।

जिस प्रकार सुख पूर्वक जीवित रहने की विद्या सीखते हैं उसी प्रकार आनंद से मरने की भी विद्या हमें सीखनी चाहिये, क्योंकि कभी न कभी मरना तो निश्चित है ही। तब मौत सुधारना क्या आवश्यक नहीं है? शास्त्रों में कहा है यदि मौत बिगड़ जाय तो चौरासी लाख के चक्र में पड़ना पड़ता है, यदि मौत बिगड़ जाय तो किया कराया सब मिट्टी में मिल जाता है और यदि मौत बिगड़ जाय तो नरक में जाना पड़ता है। पुनः शास्त्र में यह भी कहा है कि मृत्यु के समय जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है, इसलिये मौत को सुधारना एक बहुत ही आवश्यक बात है। फिर भी हम देखते हैं कि बहुत ही कम मनुष्य अपनी मौत सुधारने की इच्छा रखते हैं। अधिकांश रोते रोते बिछौना बिगड़ाते मरते हैं, हृदय में हजारों आपदायें भरकर मरते हैं, संसार भर का वैर लेकर मरते हैं, विद्रोह से पागल होकर बक झक करते हुए मरते हैं और ईश्वर का उपकार मानने के बदले उसकी तरफ मुँह बिगाड़ते बिगाड़ते मरते हैं। जैसे किसी भारी अपराध करने पर तथा पुलिस के वारंट लेकर पकड़ने के लिये आने पर अपराधी डरकर भागता है वैसे ही वे डरते डरते मरते हैं। यह क्या दुख की बात नहीं है? यह क्या हमारी अयोग्यता और धर्म का अपमान करना नहीं है? मृत्यु के समय इस प्रकार तन से तथा मनसे दुःखी होकर मरना क्या भक्तों का लक्षण है? नहीं! इस प्रकार मरना तो नीचे जाने का रास्ता है, इससे महात्मा कहते हैं कि जैसे जीवित रहने की विद्या सीखते हो वैसे ही मौत सुधारने की भी विद्या सीखो।

मृत्यु के समय भक्तों की कैसी स्थिति होती है यह क्या आप जानते हैं? मानो वे इनाम लेने के लिये जारहे हों, इस प्रकार उनका चेहरा प्रफुल्लित रहता है। उनका मन शांत होता है बुद्धि निर्मल होती है, उनका अंतः करण तृप्तरहता है और उनकी आत्मा का परमात्मा के साथ तार लगारहता है। वे उस समय जगत् की सब उपाधियों को भूलजाते हैं, सब से क्षमा माँग लेते हैं और सब को क्षमा कर जाते हैं। सबको आशीर्वाद दे जाते हैं और सबके अंतर का संतोष रूपी आशीर्वाद लेजाते हैं। जगत् को अपने उत्तम चरित्र का अधिकारी बनाजाते हैं और अपने मानने वालों का दुःख हरलेते हैं तथा वे मानो पुराना वस्त्र उतार कर नीवन वस्त्र धारण कर रहे

हों। जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीभगवान् आनन्दकन्द ने अर्जुन के प्रति कथन किया है

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

इस प्रकार ईश्वर का उपकार मानते हुए अपना देह बदलते हैं। जिस प्रकार किसी को लेने के लिये एक महाराजाधिराज की पालकी आने पर वह उसमें विनय पूर्वक गम्भीरता से बैठकर आनन्दित अंतःकरण से सबका उपकार मानते हुए महाराज की सेवा में जाता है वैसे ही संत भी स्वर्ग को जाते हुए आनन्दित हृदय से मालूम पड़ते हैं। ज्ञानियों का तो कहना ही क्या है? "ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्" इस प्रकार श्रीभगवान् ही ने अपने श्रीमुख से अर्जुन के प्रति गीता में कहा है। यानी ज्ञानी को कहीं आना जाना नहीं पड़ता।

भाइयो! क्या तुम्हें मालूम है कि ऐसी मौत कैसे सुधर सकती है? उत्तम कर्म तथा धर्म का पालन करने से, पाप से बचने से, अपने जीवन के भले कर्मों को ईश्वर के अर्पण करदेने से, जगत् को मिथ्या समझ कर वैसा ही आचरण करने से, परमार्थ करने से, यथाशक्ति जगत् के जीवों की एवं महात्माओं की सेवा करने से, आत्मिकशक्ति को विकसित करने से और परम कृपालु सर्वशक्तिमान् ईश्वर का भक्ति करने से तथा उनके स्वरूप का सत्यज्ञान प्राप्त करने से मौत सुधार सकती है। भाइयो! जैसे जीवित रहना सीखते हो वैसे ही मरना भी सीखो, क्योंकि मौत सुधारने के ऊपर ही सब का आधार है, इससे ऐसे बने मौत सुधारने का प्रयत्न करो।

प्रेमा भक्ति के साधन

[ले० भक्तरत्न श्रीमथुराप्रसाद जी]

पाराशर्य महर्षि रचित 'भक्ति सूत्र' में भक्ति का लक्षण "सा परानुरक्तिरीश्वरे" बताया गया है। ईश्वर में पराकाष्ठा यानी उत्तम दर्जे का प्रेम ही भक्ति है। अब प्रेम के साधनों का क्रम जानने की आवश्यकता है। इस कारण उन साधनों का क्रम प्रकट किया जाता है।

आदौश्रद्धा ततः साधुसंगोऽथ भजन क्रिया।
ततोऽनर्थ निवृत्तिः स्यात्ततोनिष्ठा रुचिस्ततः॥
अथाऽसक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥

श्रद्धा, साधुसंग, भजन क्रिया, अनर्थ निवृत्तिः निष्ठा, रुचि, आसक्तिः, भाव, प्रेम, यह नौ साधन हैं अर्थात् नवें दर्जे पर प्रेम है आठ उसके साधन और प्रेम साध्य है इनमें सब से पहले श्रद्धा कही गई है। उसीका वर्णन करते हैं। भगवत् गीता में तीन प्रकार की श्रद्धा बतलाई गई है। सात्विकी, राजसी और तामसी, यहां भक्ति पक्ष में अटल विश्वास का नाम श्रद्धा समझना चाहिये। शास्त्र गुरु तथा महत्पुरुषों के वचन को दृढ़ता से स्वीकार करना और उन पर भरोसा करलेना श्रद्धा है–

एक नगर में बड़ा भारी धनवान् सेठ साधु सेवी था। साधु सन्तों की सेवा में तन, मन, धन से तत्पर रहता था। उसी प्रान्त में एक चोरों की मंडली प्रायः चोरी ठगी के द्वारा लोगों को सताया करती थी, उस मंडली में एक सरदार और चार और व्यक्ति प्रधान थे· उन पांचों ने विचार किया

कि चोरी धाड़े के द्वारा जो धन हाथ लगता है उसमें प्रथम तो हिंसा होती है दूसरे उसके भोग में चिन्ता और भय लगा रहता है जिससे आनन्द नहीं मिलता। अमुक सेठ साधुओं की सेवा में लाखों रुपया लुटा चुका है और साधु लोग बिना किसी यत्न किये मौजें उड़ाते हैं हम लोग भी यदि साधु का भेष बनालें तो निर्भय और निश्चिन्त होकर मौज उड़ायेंगे। ऐसा सोच कर उन लोगों ने कुछ दिनों साधु सन्तों का संग करके उनकी रीति-भांति सीखली। उनमें एक कुछ पढ़ा लिखा भी था, उसने दो एक मंत्र भी याद कर लिये। उसीको महन्त बना कर तिलक कंठी आदि से सजा कर एक पांच मूर्ति की अच्छी भली सन्त मंडली बनाली और उसी नगर के बाहिर डेरा जमा लिया जहां वह साधु-सेवी सेठ रहता था। सेठ खबर पाते ही पहुंचा और बड़े आदर सत्कार से मंडली को अपने स्थान में ठैराया। जब रसोई तैयार होगई तो सन्तों से प्रसाद पाने के लिये, प्रार्थना करने लगा। बनावटी सन्तों के महन्त ने सेठ से प्रश्न किया कि पहले यह बताओ तुमने किसी को गुरु किया है या नहीं सेठ ने उत्तर दिया। महाराज! मैं तो आप सब सन्तों को अपना गुरु मानता हूं किसी को विशेष रूप से मैंने गुरु नहीं बनाया है इस पर महन्त बोला कि निगुरे के घर का तो हम जल तक पान नहीं कर सकते, प्रसाद पाना तो दूर रहा और इतना कह कर वहाँ से चलने को तैयार होगये। सेठ ने देखा कि सन्त अतिथि मेरे स्थान से भूखे जाते हैं यह बड़े अनर्थ की बात है। हाथ जोड़कर गिड़-गिड़ाते हुए विनती करने लगा। महाराज! ठैरिये मुझे अपराधी बना कर न जाइये, आप से अधिक योग्य गुरु कहां मिलेगा, आप ही दीक्षा देकर मुझे अपनी शरण में ले लीजिये। कपटी सन्त इस पर राजी हो गये और कंठी मंत्र देकर सेठ को शिष्य बना लिया। अब तो क्या था। सेठ को शिष्य बना कर कई महीने तक उसके पास रह कर खूब माल उड़ाये। सेठ ने सुना था कि गुरु के चरणों की रज तीनों ताप के मेटने वाली होती है और उसके सेवन से सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। इस पर पूरी श्रद्धा करके उसने गुरु जी के चरणों की रज नित्य प्रति इकट्ठी करके एक सुवर्ण की डिबिया में रख ली और आपभी सेवन करने लगा और घर में जब कोई बीमार हो जाता तो थोड़ीसी रज दे देता था। उसके दृढ़ विश्वास का यह प्रभाव था कि लोगों के कष्ट उस रज से दूर होने लगे। नगर भर में चर्चा फैल गई और सैंकड़ों दुखिया आने लगे और सेठ जी की दी हुई रज से लाभ उठाने लगे। इधर उन ठगों ने देखा कि सेठ पर उनका पूरा प्रभाव पड़गया तो विचार किया कि यह सेठ तो काबू में आ ही चुका अब किसी बड़े राजा महा-राजा पर दाव लगे तो बड़ी भारी सम्पत्ति हाथ आजाय। तृष्णा का अन्त नहीं। वे ठग इस मनोरथ से सेठ से यात्रा का बहाना करके चल दिये और एक राजधानी में पहुंचे उस रियासत में राजकुमार अत्यन्त रुग्ण था और वैद्य लोग निराश हो चुके थे। जब यह कपटी संतों की मंडली पहुंची तो यह चर्चा नगर में फैलादी गई कि महन्त महाराज की चरण रज से सर्व प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं। राज महलों में भी ऐसी चर्चा होकर राजा के कान तक पहुंची, राजा ने मंडली को बड़े आदर से बुला कर पूछा कि क्या यह बात सत्य है तो उत्तर मिला

कि सैकड़ों रोगी भले चंगे हो चुके हैं। तब वह रज उस रोगी को दी गई। परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ प्रत्युत रोग बढ़गया और राज कुमार का देहान्त होगया। इस पर राजाको बड़ा क्रोध आया और हुकम दे दिया कि यह लोग सन्त नहीं ठग पाये जाते हैं इनको फाँसी दी जाय। जब फांसी लगाने की तैयारी हुई तो पूछा गया तुम्हारे मन में कुछ वासना हो तो कह दो। इस पर उन लोगों ने कहा कि अमुक सेठ से मिलने की इच्छा है, बुला दिया जाय तो मिल लेवें, उसके बाद भले ही हमें फाँसी दे दी जाय। राजाने उस सेठ को बुलवा लिया। उसने सारा वृत्त सुन कर कहा कि गुरु चरण रज से सारे कार्य सिद्ध होते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं, राजकुमार के पास मुझे ले चलो। सेठ ने उस मुर्दे के पास जाकर अपनी डिबिया से रज निकाल कर कुछ उसके मुख में डाली कुछ शरीर पर लगाई। दैव वशात् उसकी अटल श्रद्धा के प्रभाव से राज-कुमार जी उठा। अब तो उन कपटी सन्तों का बड़ा भारी सम्मान हुआ और राजा भी शिष्य हो गया, अटल श्रद्धा का यह प्रभाव है।

श्रद्धा के अनन्तर साधु-संग साधन है। जब तक श्रद्धा न होगी तब तक न तो साधु संग प्राप्त हो सकता है और न फलदायक ही हो सकता है

श्री भगवान् की आज्ञा है कि-

नहि गंगादि तीर्थानि न देवामृत्शिलामयाः।
ते पुनन्त्यूरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥

अर्थात् गंगा आदि तीर्थ और प्रतिमा स्वरूप देवता देर से पवित्र करते हैं परन्तु साधु लोग दर्शन मात्र से उद्धार कर देते हैं। सत्संग की महिमा शास्त्र में इसीलिये सब से अधिक कही गई है कि सत् पुरुषों की संगत बिना भगवत् प्राप्ति का मार्ग हाथ नहीं आता और सन्तों के समागम से बहुत शीघ्र कल्याण हो जाता है।

एक जंगल में कोई सन्त एकान्त निवास करते थे उन के रहने की कुटिया में ठाकुर सेवा भी थी। एक दिन चार चोर राज महल में चोरी करने के विचार से चले मार्ग में साधु की कुटी पर ठैर गये। प्यासे थे साधु जी ने जल पिलाया, बैठने को आसन दिया और ठाकुर सेवा करके आर्ती के पीछे उनको प्रसाद देकर प्रेम से पूछा कि तुम लोग कहां जा रहे हो यहाँ कैसे आये? चोरों पर महात्मा की इतनी सी संगत का यह प्रभाव हुआ कि उन्होंने सत्य भाषण किया और कहा कि महाराज! हम चोरी का पेशा करते हैं आज राजा के महल में चोरी करने जारहे हैं, रास्ते में प्यास लगी तो आपके स्थान पर चले आये। महात्मा ने कहा कि भाई! चोरी कैसे करते हैं हम भी देखना चाहते हैं बड़ी चतुराई का काम है! चोरों ने कहा कि हम आप को साथ ले चल कर दिखा तो सकते हैं पर कमंन्द डाल कर रस्सी पर चढ़ के महल की छत पर जाके उतरेंगे आप से रस्सी पर कैसे चढ़ा जायगा और शर्त यह है कि चुप चाप रहना पड़ता है। महात्मा ने कहा भाई! हम को रस्सी के द्वारा वृक्ष पर चढ़ जाने का अभ्यास है हम चढ सकेंगे और चुप चाप भी रहेंगे। चोर राजी हो गये महात्माने एक झोली में अपने ठाकुर सालिग्राम और घन्टा शंख आरती आदि सामग्री रख कर झोली कमर से बांध कर तैयार हो गये वहाँ पहुंच कर चोरों के साथ महल में प्रवेश किया। एक कमरे में चोरों ने साधु को बैठा दिया और आप भंडार में जाकर माल संभालने लगे।

साधु जी जिस कमरे में बिठलाये गये थे उसकी एक ताक में श्रीजल का कलश रखा हुआ मिला। उधर रात्रि बीतने पर आई, मंगला आरती का समय आगया, तब साधु जी ने श्रीजल के कलश को काम में लिया पूजा के पार्षद (बर्तन) झोली से निकाल कर धोये और शालिग्राम जी को विराजमान कर यथाविधि सेवा करके शंख बजा दिया, घंटा बजा के आरती करने लगे। राजा रानी शंख और घंटे का शब्द सुन कर बिस्तर से उठ उस कमरे की ओर दौड़े आये। देखा कि, एक सन्त भगवान् की आरती कर रहे हैं। साष्टांग दंडवत दोनों ने की और हाथ जोड़ कर बोले, आहा! हमारा धन्यभाग जो आपने इस स्थान को पवित्र किया आप नारद ऋषि हैं या और कोई देव ऋषि जो आकाश मार्ग से महल में पधार आये, हमको निहाल कर दिया। राजा के ऐसे विनीत वचन सुनके महात्मा कहने लगे राजन! हम अकेले नहीं हैं चार मूर्ति और हमारे साथ हैं। यह शब्द महात्मा का चोरों ने सुन पाया वे शंख तथा घंटानाद सुन कर पहले ही भयभीत हो रहे थे। चोरों ने जो गठरी माल की बाँधी थी वहीं छोड़ी और जल्दी से खाली हाथों उस कमरे की ओर आ पहुंचे। राजा ने उन चारों चारों के चरणों में भी दण्डवत् की और आसन देकर चोरों को बिठा के बोला "आपने बड़ी कृपा की जो मुझ अधम गृहस्थी को दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया, आज्ञा कीजिये दास सेवा को तैयार है।" चोर बोले महाराज! हम साधु नहीं हैं चोर हैं और दण्डनीय हैं क्योंकि चोरी के विचार से आये हैं। राजा बोला नहीं नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता। इन महात्मा के साथ चोरों का क्या काम। सत् पुरुषों का स्वभाव होता है कि अपने को नीचा दिखाते हैं। तब एक ने चोरे हुए माल की गठरी लाकर सामने रखदी, उसे देख कर राजाने कहा यदि ऐसा भी हो तो इन महात्मा के सँग से आप भी पूजनीय हो और खवास को बुला कर राजा ने बहुत सा जेवर मंगा कर सामने रख कर कहा कि लीजिये जो गठरी आपने बांधी वो भी ले जाइये और यह भेट हमारी ओर से स्वीकार कीजिये। चोरों ने लज्जित होके विनय पूर्वक उत्तर दिया कि राजन् अब यह धन माल हमारे किसी काम का नहीं, हमें सत्संग का प्रभाव निश्चय होगया, अब हम इस कुकर्म को त्याग कर प्रतिज्ञा करते हैं कि घर भी न जावेंगे और इन ही महात्मा की सेवा में रह कर भजन करेंगे। राजा के बहुत आग्रह करने पर भी चोरों ने माल न लेकर जो वस्त्र पहन रखे थे उन्हें भी उतार फैंका, केवल कौपीन मात्र रख कर सच्चे साधु बन गये। राजा ने यह दशा देख कर बड़ा विस्मय किया और उसके चित्त में वैराग्य उत्पन्न हो गया और स्वयं भी महात्मा का शिष्य होकर विरक्त हो भजन करने लगा। धन्य है सत्संग की महिमा, इसीलिये गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है।

तातस्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग।
तुलै न तासों सकल मिल जो फल लव सत्संग॥

अपूर्ण

ईशस्तवन।

[ले० श्रीरमाशंकर जी मिश्र 'श्रीपति']

हे परमेश्वर, परमपिता, परमात्मन्! प्रभु सुखदायक हो,
आप हमारे संरक्षक, उर-प्रेरक और सहायक हो।

हम सब मिलकर सदा तुम्हारी भक्ति करें, यश-गान करें,
श्रद्धा-पूर्वक पद-पद्मों में शीश झुका सम्मान करें।

हे करुणासागर! तुमको तज, शरण भला किसकी जायें,
आप अनन्त क्षमा-स्वरूप हैं, तब हम और किसे ध्यायें।

तुम्हीं हमारे अधिष्ठान हो एकमात्र आधार विभो!
हे सर्वेश्वर! तव चरणों में बारम्बार प्रणाम प्रभो!

प्राप्त हुआ करते जिस पथ से, दिव्यज्योतिमय हे स्वामी!
दिव्य-दृष्टि दे हमें बनालो, उसी मार्ग का अनुगामी।

आप प्रदर्शक हैं सत्पथ के, त्रिभुवन के सञ्चालक हैं!
करें ग्रहण नेतृत्व हमारा, हम अबोध हैं, बालक हैं।

दृढ़ात्मिका वह बुद्धि हमें दो, जिससे दृढ़ विश्वास रहे,
शिव-सङ्कल्प उठें मन में नित, प्रभु का ही आभास रहे।

ऋषि महर्षि तुमको जिस पथ से प्राप्त हुये अन्तर्यामी,
करो प्रेरणा उसी मार्ग की, बन न हम कुमार्ग-गामी।

रहे चित्त में चिन्तन प्रतिपल, देव! दृगों में वास करो,
मुझ पर हो अधिकार तुम्हारा, भव के सारे दुःख हरो।

आप नियन्ता हो जीवन के, अखिल विश्व का हित ठानें,
हम भी लगें आत्मवत् सब को, प्रभु का ही स्वरूप मानें।

परहित में अपना हित समझें, परोपकार धर्म मानें,
करें प्रचार भक्ति का जग में, जन्म सफल इसमें जानें।

चलें तुम्हारे भक्ति-मार्ग पर, क्यों न कोटि संकट आवें,
दुःखों को सानन्द सहनकर, सदा भजन में सुख पावें।

अमित शक्तियां नाथ! आप की, जिसका आदि न अन्त कहीं,
प्रभु-प्रदत्त-सत्ता-ज्योतिर्मय, उकल भवन में व्याप रही।

विमुख द्वार से गया न कोई, याचक हुआ निराश नहीं,
कितनों ने अभीष्ट वह पाया, मिला न जो हे देव! कहीं।

राम कृष्ण आदिक स्वरूप में हे श्रीपति! नर-तन-धारी!
अन्तिम यही प्रार्थना मेरी, हे भगवन्, भव-भय-हारी!

बनें भक्त हम सच्चे प्रभु के, सब में शक्ति प्रचार करें,
पूरी हो प्रभु इच्छा जैसे, उसमें ही मन मोद भरें।

हो सर्वत्र राज्य तव स्वामिन्! प्राणिमात्र पर कृपा करो,
देव आशीर्वाद जगत् को, जगत्पते! भूभार हरो।

———

आध्यात्मिक शिक्षाएं

[ले० परमहंस श्रीस्वामी शिवानन्द जी।

१. नित्य प्रातःकाल ४ बजे उठ जाओ। यह ब्रह्म मुहूर्त है और परमात्मा के ध्यान में अत्यन्त सहायक है।

२. आसन–आध घण्टे तक पद्म, सिद्ध या सुखासन से बैठो। शनैः २ तीन घण्टे तक का अभ्यास करलो।

३. जप अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार नित्य १०८ बार से लेकर २१६०० तक इनमें से किसी भी पवित्रमंत्र का जप करो। केवल ओ३म्, ओ३म् नमो नारायण, ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय, सीता राम या श्रीराम।

४. भोजन सम्बन्धी नियम–

लाल मिरच, इमली, लहसन, प्याज़, खट्टी चीजें, तेल, राई इत्यादि खाना छोड़दो। भोजन संयम से करो, पेट को अधिक न भरो। १५ दिन तक उन पदार्थों को छोड़ दो जिन पर चित्त बहुत चलता है। सादा आहार करो, फलों और दूध के सेवन से चित्त की एकाग्रता बढ़ती है। जीवन निर्वाह मात्र के लिए भोजन औषधि के रूप में सेवन करो। स्वाद के लिए खाना पाप है। एक मास के लिए नमक और शक्कर का त्याग करदो।

ऐसा साधन करो कि बिना किसी प्रकार की चटनी के तुम दाल, रोटी और चावलों पर निर्वाह कर सको।

५. ध्यान के लिए पृथक् कमरा होना चाहिए जिसमें और काम न हो।

६. दान– प्रत्येक मास अपनी आय में से एक आना प्रति रुपया नियम से दान करो।

७. स्वाध्याय–नित्य प्रति गीता, रामायण, भागवत, उपनिषद् या योगवशिष्ठ का आध घण्टे से लेकर १ घण्टे तक पाठ करो।

८. नियम से हलका व्यायाम करो जैसे घूमना आदि।

९ ब्रह्मचर्य की जो कि जीवन शक्ति है पूर्ण सावधानी से रक्षा करो। वीर्य ही परमात्मा है, वीर्य ही पूर्ण शांक्त है, वीर्य ही सम्पत्ति है, वीर्य ही जीवन का, विचारों का और बुद्धि का सार है।

१०. कुछ मंत्र, प्रार्थना या श्लोक कंठ करलो और ध्यान जप के लिए जब तुम आसन लगाकर बैठो तो उनको उच्चारण करो इससे चित्त शीघ्र लग जावेगा।

११. एकादशी को उपवास करो।

१२. तम्बाखू, मांस, शराब का त्याग करदो।

१३. जप करने के लिये माला या स्मरणी अपनी जेब में, गले में या तकिए के नीचे रक्खो।

१४. नित्य प्रति कुछ घण्टे मौन रहो

१५. प्रत्येक दशा में सत्य भाषण करो, मिष्ट भाषण करो और कम बोलो,

१६. अपनी आवश्यकताओं को कम करो यदि तुम्हारे पास ४ क़मीज हैं तो दो या तीन रक्खलो।

१७. प्रेम, क्षमा और दया करके क्रोध पर काबू करो।

इन नियमों या आध्यात्मिक विधियों का दृढ़ता पूर्वक प्रत्येक कठिनाई सहकर अवश्य पालन करो। मनके साथ नरमी या लाड़ न करो।

प्राप्ति स्वीकार।

धर्मांक- अमरौधा जि० कानपुर से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र 'हिन्दु' का यह विशेषांक है। इसमें सार्वजनिक धर्म का भली प्रकार विवेचन किया गया है। मूल्य २)

ऋग्वेद संहिता- प्रकाशक वैदिक पुस्तक माला कृष्णगढ़ सुलतान गंज भागलपुर मूल्य २) यह हिन्दी जगत् में अद्वितीय पुस्तक है। ऊपर मूल और नीचे सायण भाष्य के आधार पर हिन्दी टीका है। पुस्तक संग्राह्य है।

विवेक चूड़ामणि- प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर मूल्य ।) भगवान श्रीशंकराचार्य विरचित यह हिन्दी अनुवाद सहित उत्तम पुस्तक मुमुक्षु पुरुषों के अत्यन्त लाभ की चीज है।

प्रबोध सुधाकर- यह भी भगवान् श्रीशंकराचार्य जी के 'प्रबोध सुधाकर ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद है। प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर मूल्य ।)॥

आनन्द की लहरें- प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर ले० श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार। मूल्य ।)॥

तुलसीदास- ले० श्रीहनुमान प्रसाद जी पोद्दार, प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर-इसमें श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार के उत्तम लेखों का संग्रह है। प्रत्येक लेख में मन को भगवत् की ओर खींचने की अद्भुत् शक्ति है। मूल्य ॥)

गीता निबन्धावली- ले० श्रीजयदयाल जी गोयन्द का, प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर। इसमें श्रीजयदयाल जी ने जीव, ईश्वर और ब्रह्म का भेद, क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम, गीता में भक्ति आदि दस विषयों को बड़ी सुगमता से समझाया है। मूल्य ।)॥

उपनिषत्- प्रकाशक वेदान्त केसरी कार्यालय आगरा। यह हिन्दी साहित्य में अपने ढंग की प्रथम पुस्तक है। इसमें दशोपनिषदेतर५१ उपनिषदों का हिन्दी अनुवाद है। मूल्य २॥)

भजन

मेरो मन रामहि राम रटै रे ॥ टेक ॥
राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।
जनम जनमके खत जु पुराने, नामहि लेत फटै रे॥१॥
कनक-कटोरे अमृत भरियो, पीवत कौन नटै रे।
मीरा कह प्रभु हरि अविनाशी, तन मन ताहि पटै रे॥२॥

(२)

भज ले रे मन गोपाल गुना।
अधम तरे अधिकार भजन सूँ,
जोई आये हरि सरना॥
अविश्वास तो साखि बताऊँ,
अजामील गणिका सदना॥ १॥
जो कृपाल तन मन धन दीन्हों,
नैन नासिका मुख रसना॥
जाको रचत मास दस लागे,
ताहि न सुमिरो एक छिना॥ २॥
बालापन सब खेल गँवायो,
तरुन भयो जब रूप घना॥
वृद्ध भयो जब आलस उपज्यो,
माया मोह भयो मगना॥ ३॥

गज अरु गीधहु तरे भजन सूँ,
कोउ तरयो नहिं भजन बिना ॥
धनाभगत पीपामुनि सिवरी,
मीरा की हूं करो गणना ॥ ४ ॥

(३)

तुम सुनो दयाल म्हांरी अरजी ॥टेक ॥
भौसागर में बही जात हूं,
काढ़ो तो थारी मरजी ॥
जो संसार सगो नहिं कोई,
साँचा सगा रघुवर जी ॥ १ ॥
मात पिता और कुटुम्ब कबीलो,
सब मतलबके गरजी ॥
मीराकी प्रभु अरजी सुन लो,
चरण लगावो थांरी मरजी ॥ २ ॥

(४)

श्रीगुरुदेव भरोसो सांचो ।
अष्टजाम गुरु-ध्यान हिये धरु,
मारो काम क्रोध रिपु पाँचो ॥
तन मन धन सर्वस लै अरपी,
श्रीगुरु-कृपा भक्ति रंग रांचो ।
जुगलप्रिया श्रीगुरु गोविंदको,
निमिष न भूल खेल सब कांचो ॥

(५)

बाला मैं बैरागण हुंगी ।
जिन भेषां म्हारो साहिब रीझे,
सोही भेष धरूँगी ॥ १ ॥
शील संतोष धरूँ घट भीतर,
समता पकड़ रहुंगी ।
जाको नाम निरंजन कहिये,
ताको ध्यान धरूँगी ॥ २ ॥
गुरु के ज्ञान रँगूं तन कपड़ा,
मन मुद्रा पैरूँगी ।
प्रेम-पीतसूं हरि गुण गाऊँ,
चरणन लिपट रहुंगी ॥ ३ ॥
या तनकी मैं करूँ कीगँरी,
रसना नाम कहुंगी ।
मीराके प्रभु गिरधर नागर,
साधां संग रहुंगी ॥ ४ ॥

(६)

हमारे गुरू पूरन दातार ।
अभय दान दीननको दीन्हें,
कीन्हें भव-जल-पार ॥
जन्म-जन्मके बन्धन काटे,
जमकी बन्ध निवार ।
रंकहु ते सो राजा कीन्हें,
हरि धन दियो अपार ॥
देवैं ज्ञान भक्ति पुनि देवैं,
जोग बतावन हार ।
तन मन बचन सकल सुखदाई,
हिरदे बुधि-उजियार ॥
सब दुख गंजन पातक भंजन,
रंजन ध्यान विचार ।
साजन दुर्जन जो चलि आवै,
एकहि दृष्टि निहार ॥
आनन्दरूप स्वरूपमई है,
लिप्त नहीं संसार ।
चरनदास गुरु सहजो केरे,
नमो-नमो बारम्बार ॥